गद्य-सौरभ

[चुनी हुई उत्कृष्ट गद्य रचनाओं का संग्रह]

सकलनकर्त्ता और सपादक

गुरु प्रसाद टंडन, एम० ए०, एल-एल० बी०

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग, विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर
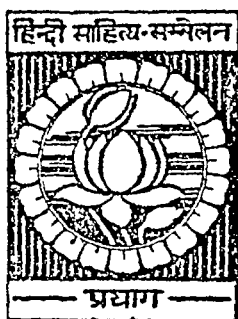
२००९

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशकीय

उत्कृष्ट गद्य रचनाओ का यह सग्रह प्रथमा के परीक्षार्थियों के लिए प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत साहित्य के समान हिन्दी साहित्य में भी गद्य का युग पद्य के अनन्तर ही आता है। अपभ्रंशपूर्ण हिन्दी का प्राचीनतम रूप सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में मिलता है। तदनन्तर उसका क्रमिक विकास होता गया और परिणामस्वरूप आज का गद्य साहित्य अपने परिमार्जित रूप में प्रस्तुत है। आधुनिक प्रमुख गद्य लेखकों की भावात्मक, ऐतिहासिक, आलोचनात्मक, कथोपकथन, नाटक और वैज्ञानिक सभी प्रकार की रचनाएं हिन्दी गद्य के विविध स्वरूपों के परिचयार्थ संगृहीत की गयी है।

हमारा विश्वास है, इस संग्रह से प्रथमा के विद्यार्थियों को यथेष्ट ज्ञान-प्राप्ति होगी।

—साहित्य मंत्री

विषय-सूची

भूमिका

हिन्दी गद्य की प्रगति

साहित्यिक नियमानुसार सभी देशो मे पद्य का युग गद्य से पूर्व आता है। मत्र या गीत की सृष्टि पहले होती है। भावो को शाश्वत रूप देने के लिए गद्य कुछ अशक्त समझा जाता है। भारत मे तो वैद्यक, रसायन, वास्तु-विद्या आदि शास्त्र भी पद्य मे लिखे मिलते है। लोलिबराज के वैद्यक ग्रन्थ से शास्त्रीय जान के अतिरिक्त काव्य का रस भी मिलता है। इस पद्य-प्रेम के कारण गद्य को टीका टिप्पणियो मे ही सकुचित हो जाना पडा। वाण की कादम्बरी एव दडी के दशकुमार चरित से गद्य को काव्यत्व का आदर्श अवश्य प्राप्त हुआ किन्तु सामाजिक अथवा व्यावहारिक विषयो मे भी गद्य के प्रति वहुत काल तक उदासीनता ही रही। प्राकृत एव अपभ्रश साहित्य मे भी गद्य उपेक्षित रहा है।

यह कहा जा चुका है कि साहित्य का आरम्भ पद्य से ही होता है। हिन्दी साहित्य का भी यही क्रम है। अपभ्रंशपूर्ण हिन्दी का प्राचीनतम रूप तात्रिक सिद्धो की रचनाओ मे सातवी शताव्दी के अतिम भाग मे मिलता है। कवि सरहपा ने उस समय अतर्मुखी साधना पर वल दिया था। हिन्दी की पहली सम्यक रचना 'खुमान रासो' है जिसका काल स० ९०० माना जाता है। इससे कम-से-कम १०० वर्ष पूर्व तो वोल-चाल मे हिन्दी आ ही गई होगी। कुसुम माला' नामक अपभ्रश ग्रन्थ मे हिन्दी का प्राचीनतम स्वरूप एक मझेसी दुकानदार के मुख मे इस प्रकार है—'तेरे

मेरे आउ'। इस लघु वाक्य से हिन्दी के अस्तित्व का बोध तो होता है पर उसका स्वरूप-विस्तार नही मिलता। तदनन्तर तेरहवी शताब्दी की कुछ सनदो और दानपत्रो मे हिन्दी गद्य का कुछ प्राचीन रूप मिलता है। ये दानपत्र राजस्थान मे अब भी सुरक्षित है। इसके उपरात् गोरखनाथ जी के नाम से प्रसिद्ध स० १६०७ का छोटा सा गद्य ग्रन्थ 'शिप्ट प्रमाण' मिलता है। गोरखनाथ का समय तो ग्यारहवी शताब्दी से पूर्व है पर उनके नाम से मिले हुए ग्रन्थो के विषय मे लोगो का विचार है कि उनके शिष्यो ने कदाचित् रचे होगे। कुछ भी हो उक्त ग्रन्थ से पन्द्रहवी शताब्दी के अविकसित हिन्दी गद्य का आभास मिलता है—

"अज्ञान उपरात अधकार नाही। ज्ञान उपरात प्रकाश नाही।"

यह भाषा ब्रजभाषा के पुराने रूप की परिचायिका है। तत्पश्चात् महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के पुत्र गोसाई विट्ठलनाथ जी ने स० १६०० मे 'श्रृगार रस मडन' नामक गद्य ग्रन्थ लिखा जिसमे राधाकृष्ण की विहार-लीला ब्रजभाषा गद्य मे वर्णित है। इसका गद्य कुछ व्यवस्थित नही है।

वस्तुत हिन्दी के सर्वप्रथम समीचीन गद्य का उदाहरण विट्ठलनाथ जी के पुत्र गोसाई गोकुलनाथ की म० १६४८ के आसपास लिखी हुई 'चौरासी वैप्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे मिलता है। यथा—

'जो नददास तू ऐसो कठोर क्यो भयो है तेरो मन होय तो प्रयाग मे रहियो, चित्रकूट मे रहियो'। ब्रजभाषा के गद्य का प्रौढ स्वरूप गोकुलनाथ जी के समय से प्राप्त होता है। धार्मिक उद्देश्य से प्रेरित हो गद्य वार्ता लिखने की परिपाटी गोकुलनाथ जी ने चलाई थी। अरबी, फारसी के शब्द इनके गद्य मे है पर भाषा मे माधुर्य है और शैली सुबोध है।

भूमिका

पुष्टि मार्ग मे समय समय पर आगे भी कई वार्ताएँ लिखी गई है उनकी भाषा गोकुलनाथ जी के गद्य से मिलती-जुलती है। इसी समय के आस-पास 'चद छद वरजन की महिमा' नामक गद्य ग्रन्थ गगा भाट ने लिखा जो खडी वोली मे है।

हमारा प्राचीन गद्य साहित्य व्रजभाषा मे है किंतु मुसलमानो से खडीवोली गद्य को सहारा मिला है। व्रजभाषा गद्य का आगे कोई विकास न हो सका। टीकाकारो ने इसका प्रयोग कही कही किया है पर वह सुव्यवस्थित नही है। भारत का माध्यमिक काल सघर्षमय था पर मुगलकाल मे सापेक्षिक शाति मिल गई थी। हिन्दू और मुसलमानो के पारस्परिक सपर्क से विचार-विनिमय होने लगा था। दिल्ली और मेरठ के आस-पास की वोली साधारण व्यवहार मे प्रयुक्त होने लगी थी। इसी खडीवोली की भूमि पर कुछ पजावी और व्रजभाषा तथा कुछ अरवी और फारसी शब्दो के सयोग से तत्कालीन हिन्दी का रग निखर रहा था। उर्दू का उदय इसी रूप के भीतर से हुआ है। अकवरी दरवार के गगा भाट का गद्य देखिए—

'इतना सुन के वादशाह जी श्री अकवर शाह जी आद सेर सोना नरहरिदास चारन को दिया। इनके डेढ सेर सोना हो गया' (स० १६२७)।

इसके वाद कतिपय टीकाओ एव अनुवादो मे गद्य का उल्लेख मिलता है पर उनका कोई साहित्यिक महत्व नही है। कौतूहल मात्र की पुष्टि उनसे होती है। 'जो है सो', 'क्या नाम' की पुनरावृत्ति के कारण अर्थ निकालना कठिन हो जाता है।

अँगरेजो के आगमन से भारत की सामाजिक एव राजनीतिक स्थिति मे परिवर्तन हुआ। व्यावहारिकता की वृद्धि के कारण गद्य को उत्तेजन मिलना स्वाभाविक था। जो खडीवोली सुल्तानो के शासन काल मे ही किसी-न-किसी रूप मे प्रचलित थी उसे १९ वी शताब्दी के मध्य भाग मे नियमित रीति से हिन्दी गद्य का रूप दिया गया। इस रूप-निर्माण के अवसर पर चार

मूर्त्तियाँ सामने आती है—मुशी सदासुखलाल, इशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र।

मुशी सदासुखलाल ने श्रीमद्भागवत का अनुवाद 'सुखसागर' नाम से किया। इसमे बोलचाल की शिष्ट भाषा जो, पूर्वी प्रान्त मे प्रचलित थी, अपनाई गई है। साधु-सतो, कथावाचको मे प्रचलित खडी बोली का रूप उन्होने रखा है और उसमे सस्कृत शब्दो की भी पुट मिली हुई है। यथा—

'विद्या इस हेतु नही पढते है कि चतुराई की बाते कह के लोगो को बहकाइए और फुसलाइए और सत्य छिपाइए'।

इशा अल्ला खाँ सस्कृत फारसी के प्रभाव से रहित ठेठ भाषा के समर्थक थे जिसमे उन्ही के शब्दो मे 'हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो'। इशा की 'रानी केतकी की कहानी' बडी रगीन और चुलबुली शैली मे है। धार्मिकता से मुक्त होकर गद्य लौकिकता के पथ पर अग्रसर हुआ। इशा के गद्य मे घनिष्ठता, चचलता और बाँकापन है। खडीबोली गद्य का सर्वप्रथम विकसित रूप यही है। इशा मे विदेशीपन तो कम है पर ब्रजभाषा के प्रभाव से वे पूर्णतया मुक्त नही है। अँगरेजो की राजधानी पहले कलकत्ता थी। वाणिज्य व्यापार के लक्ष्य से ही उनका आगमन हुआ था। भारत के रीति-रिवाज एव दर्शन से अँगरेज परिचित होना चाहते थे। कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज के जॉन गिलक्राइस्ट के अनुरोध से लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की। लल्लूलाल का गद्य पद्यात्मक है। उसका झुकाव ब्रजभाषा की ओर विशेष है और भाषा मे नियत्रण कम है—

'इतना कह महादेव जी गिरिजा को साथ ले गगातीर पर जाय, नीर मे न्हाय न्हिलाय, अति लाड प्यार से लगे पार्वती जी को वस्त्राभूषण पहिराने।' मिश्र जी का गद्य व्यावहारिक एव प्रौढ है पर उसमे बिहारीपन

है। अवधी के 'मतारी', 'जौन', 'इहाँ' आदि एव व्रजभाषा के 'फूलन्ह', 'सोनन्ह' आदि का प्रयोग उन्होने किया है।

उपर्युक्त चारो लेखको मे भाषा की स्वच्छता और साधुता की दृष्टि से सदासुखलाल का पहला स्थान है। इस प्रकार हिन्दी गद्य स्वतत्र रीति से विकसित हो रहा था पर परिस्थितियोके प्रभाव से उसे उत्तेजना भी मिलती गई। अँगरेजो द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार से हिन्दी गद्य को प्रोत्साहन मिला। अँगरेज़ी राज्य मे शाति स्थापित हुई। गद्य के विकास के लिए उचित वातावरण मिला। भौतिकता की वृद्धि हुई, बुद्धिवाद और विज्ञानवाद का विस्तार होने लगा। जीवन-सघर्ष तो आया ही पर अँगरेजी के उच्च गद्य साहित्य से भी प्रेरणा मिलने लगी। अत हिन्दी गद्य बहुमुखी धाराओ मे क्रमश विकसित हो चला।

अँगरेजी स्कूलो की स्थापना और ईसाइयो के धर्म प्रचार से गद्य की प्रगति होने लगी। कलकत्ते के श्रीरामपुर प्रेस से ईसाई धर्म ग्रन्थ हिन्दी गद्य मे अनूदित हो बहुत मात्रा मे प्रकाशित हुए। इनका सगठन कही-कही अँगरेजी शैली पर था पर शब्दावली हिन्दी-प्रकृति पर रही। सस्कृत तत्सम शब्दो का भी उनमें यथेष्ट प्रयोग है। ईसाई धर्म प्रचार को कम करने मे आर्य समाज का विशेप हाथ रहा है। स्वामी दयानद ने हिन्दी को ही प्रोत्साहन दिया था। पजाव जैसे उर्दू के केन्द्र मे भी आर्य-समाज ने हिन्दी को वहुत बल दिया। स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' आदि सभी ग्रन्थ हिन्दी ही मे लिखे है। इनकी भाषा मे हास्य, व्यग्य और ओज के साथ कुछ कर्कशता भी है। प्रेस की स्थापना ने गद्य की व्यापकता मे योग देकर पद्य की आवश्यकता मानो कुछ कम की। परिस्थिति के प्रभाव से हिन्दी गद्य कथा साहित्य के सीमित क्षेत्र से निकल कर वाद-विवाद, आलोचना एव तथ्यातथ्य निरूपण के पथ पर भी अग्रसर होने लगा।

हिन्दी की उन्नति मे इस अवसर पर दो प्रमुख कठिनाइयाँ थी। एक तो यह कि अंग्रेजी राज्य मे भी अदालती भाषा फारसी थी, उर्दू के पठन-पाठन के विना काम न चलता था। दूसरी बाधा यह थी कि शिक्षा-विभाग मे मुसलमान अधिकारी ही विशेष थे और वे उर्दू के आगे हिन्दी को बढावा देना नही चाहते थे।

स० १९१३ मे राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' स्कूली आवश्यकताओ को ध्यान मे रख कर गद्य-रचना मे प्रवृत्त हुए। सामयिक दृष्टि से प्रचार के निमित्त ये देवनागरी लिपि और उर्दू मिश्रित गद्य के पक्षपाती थे। अधिकारियो की प्रवृत्ति देख कर 'सितारे हिन्द' ने हिन्दी और उर्दू के बीच पुल वनाने का प्रयत्न किया था। सस्कृत और ग्रामीण शब्दो से वे वहुत चौकते थे। पहले तो वे सरल हिन्दी के पक्षपाती थे पर आगे चलकर फारसी मिश्रित हिन्दी लिखने लगे। उनका 'वनारस अखबार' नागरी लिपि मे उर्दू से ही भरा रहता था। ठीक इनके विरुद्ध राजा लक्ष्मण सिह अरवी फारसी मिश्रित हिन्दी को हिन्दी ही नही कहते थे। वे कहते है—

'हिन्दी और उर्दू दो बोलियाँ न्यारी न्यारी है।' उनका गद्य सितारे हिन्द के विरोध मे अमिश्रित हिन्दी के मार्ग पर चला जिसमे उर्दू-फारसी का वहिष्कार और सस्कृत-व्रजभाषा का ग्रहण था। इनकी भाषा पुष्ट और मधुर है किन्तु आगरे की बोलचाल की पुट इनके गद्य मे है। हिन्दी मे सस्कृत शव्दो के प्रयोग की रीति लक्ष्मणसिह ने ही डाली है। यह आज भी हम अपने गद्य मे देखते है। इनके 'प्रजा हितैषी' पत्र से गद्य के विस्तार मे सहायता मिली थी। आर्य समाज ने 'आर्य भाषा' के रूप मे हिन्दी का जो प्रचार किया उसके लिए व्याख्याताओ से भी बडा प्रोत्साहन मिला। पजाब निवासी प० श्रद्धाराम फुलौरी एक प्रकृष्ट व्याख्याता थे। उनका गद्य प्रौढ है। उनके द्वारा ही एक प्रकार से जीवनी और उपन्यास की नींव हिन्दी मे पडी।

भूमिका

हिन्दी गद्य इतने समय तक कई शैलियो के आवरण पहन चुका था। सदासुख का पडिताऊपन, लल्लूलाल का ब्रजभापापन, सदल मिश्र का पूर्वीपन, सितारे हिन्द का उर्दूपन, लक्ष्मण सिंह का आगरापन इत्यादि कई 'पन' थे। गद्य को इन 'पनो' के प्रयोग से बचा कर स्थायित्व की दिशा दिखलाने का महत्वपूर्ण कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। इसी से हिन्दी गद्य के वास्तविक जन्मदाता भारतेन्दु माने जाते है। वर्तमान हिन्दी गद्य का आदर्श रूप जो स्वीकृत है वह हमे सब से पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचना मे मिलता है।

'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' आदि पत्रो के द्वारा भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य का शिष्ट, शालीनतामय रूप प्रगट किया जो इनकी रचनाओं मे प्रगल्भता के साथ विकसित हो गया है। इनका गद्य ब्रजभापा की कोमलता से सम्पन्न होते हुए भी खडीबोली के वाक्य-विन्यास और मुहाविरो से परिपूर्ण है। इनके गद्य मे कविता का-सा लय, सामजस्य स्वभावत है। हास्य और व्यग्य की पुट के साथ लोकोक्तियो और मुहाविरो को सब से पहले भारतेन्दु ने ही गद्य मे प्रयुक्त किया। उन्होने नाटक और प्रहसन मे गद्य को रख कर अपरिमित प्रयोग के लिए उसे उपयुक्त सिद्ध कर दिया। नागरिक लावण्य एव काति से इनका गद्य परिपूर्ण है, हास्य शिष्ट है, ग्रामीणता कही नही दिखाई देती। लक्ष्मणसिंह और सितारे हिन्द ने गद्य को क्रमश उर्दू, हिन्दी की खीचतान मे डाल रखा था। भारतेन्दु का महत्व यह है कि उन्होने गद्य को एक निश्चित दिशा मे अप्रतिहत गति से प्रवाहित किया। यह आदर्श मिश्रित भापा का आदर्श था। इनके लेखो मे मार्मिकता है, चमत्कार की प्रवृत्ति नही है। धार्मिक एव राष्ट्रीय विपयो का विवेचन कर भारतेन्दु ने गद्य की अभिव्यजना शक्ति को प्रखर किया। देशहित और समाजहित से पूर्ण प्राचीन और नवीन का मनोरम समन्वय इनकी कला की विशेपता

है। तथ्यनिरूपण एव भावावेश, दोनो ही शैलियो मे इनका गद्य मिलता है। उसमे अरवी, फारसी के सरल वोलचाल के शव्द भी है और सस्कृत की सरल प्राजल शव्दावली भी है। भारतेन्दु ने नवयुग की सूचना दी थी। नया दृष्टिकोण, नया विपय, नई उमगे साहित्य को मिली।

पत्र पत्रिकाओं का उदय

भारतेन्दु के समय मे ही पत्रकार कला का उदय और विकास हुआ। स्वय भारतेन्दु ने 'कवि-वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मॅगजीन', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' तीन पत्र निकाले। इसी काल मे वदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'नागरी नीरधि' और 'आनन्द-कादम्विनी', प० तोताराम ने 'भारत वधु', प० वालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप', प० प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' और प० केशवराम भट्ट ने 'विहार वधु' निकाला। इतिहास, उपन्यास, कथा कहानी, प्रहसन, नाटक आदि विविध विषयों का साहित्य इन पत्रो मे समय समय पर प्रकाशित होता रहा। गद्य की क्षमता स्वभावत विविध प्रयोगो से परिमार्जित हो चली। पत्रो की व्यग्यात्मक टिप्पणियो के लिखने मे भारतेन्दु, तोताराम और केशवराम भट्ट अधिक सफल हुए। गद्य लेखको का एक अच्छा मडल इस काल मे तैयार हो गया। वदरीनारायण चौधरी, प्रतापनारायण मिश्र, तोताराम, जगमोहनसिह, श्रीनिवासदास, वालकृष्ण भट्ट, अम्विका दत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी आदि महानुभावो ने नूतन गद्य साहित्य के विकास मे योग दिया। इस हरिश्चन्द्र-मडल के लेखको मे चपलता और उत्साह की मात्रा पर्याप्त थी। भट्टजी की भाषा प्रौढ और परिमार्जित है। सस्कृत शैली और मिश्रित गद्य के वे पक्षपाती थे। हास्य और व्यग्य मँझे हुए है। व्यक्तित्त्व की छाप के साथ उत्कृष्ट निवधो का सूत्रपात भट्टजी के द्वारा हुआ।

प्रतापनारायण मिश्र विनोदप्रिय व्यक्ति थे । इनके गद्य मे व्यग्यपूर्ण वक्रता मिलती है और नैसर्गिकता के साथ साथ ग्रामीणता का प्रवाह भी है। घनिष्ठता तो भट्टजी से अधिक इनके गद्य मे है पर हास्य कही कही सयमरहित भी है। स्पेलिग और विराम के दोषो के साथ कुछ पूर्वीपन की झलक भी इनके गद्य मे है।

अँग्रेजी के ससर्ग से नये नये शब्द और मुहाविरे हिन्दी गद्य मे आने लगे थे। विराम आदि चिन्हो का प्रयोग भी होने लगा था। 'प्रेमघन' जी की भाषा अनुप्रास, श्लेष आदि अलकारो के भार से अवनत हो मथर गति से चलती है। भट्टजी और मिश्र जी ने जिस गद्य को बलिष्ट बनाया था 'प्रेमघन' ने उसमे कला का आर्विभाव किया। अनुप्रास और अनूठे पद-विन्यास की ओर इनका ध्यान गया था। इनकी भाषा में यद्यपि दुरूहता और अव्यावहारिकता है पर वह अर्थगर्भित अवश्य है। कही-कही वाक्यो की लम्बाई अँग्रेज लेखक रस्किन की याद दिला देती है। चमत्कार और आलकारिकता के कारण स्वाभाविकता की कुछ हानि तो है परन्तु समालोचना का प्रारम्भ इन्ही ने किया था।

भाषा की व्यजना शक्ति बढाने और उसके प्रसार मे तो बहुत से लेखक सहायक हुए है किन्तु उसकी शुद्धता की ओर कम लेखक ही सचेप्ट थे। इसी बीच प० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने व्याकरणसम्मत शुद्ध गद्य-रचना को विशेष उत्तेजन किया। 'सरस्वती' के सपादक के रूप मे द्विवेदीजी ने बहुत से लेखो को काट-छॉट कर शुद्ध रूप देने मे बडा परिश्रम किया था। उनके गद्य मे ओज और गाभीर्य के साथ व्यग्य और प्रतिपक्षता की मात्रा विशेष है। बोलचाल के प्रचिलित विदेशी शब्दो एव मुहाविरो का प्रयोग करके द्विवेदी जी ने भाषा को बडी सजीवता दी। व्यग्यात्मक अथवा गवेषणात्मक आदि विभिन्न शैलियो मे गद्य को

किया है। जन रुचि के प्रवाह मे सरल तथा प्रभावोत्पादक गद्य की नीव इन्होने डाली।

राष्ट्रीय उत्साह का प्रकाशन साहित्यिक तथा सास्कृतिक जागरण मे भी दिखाई देने लगा। प्रयाग मे हि० सा० सम्मेलन तथा काशी मे नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना सास्कृतिक उन्मेप के ही रूप है। परीक्षा की व्यवस्था, साहित्यिक शोध एव साहित्यिक प्रकाशन के द्वारा इन सस्थाओ ने गद्य के विकास मे वहुत सहायता पहुँचाई है।

आधुनिक गद्य

आधुनिक काल मे आते ही गद्य शैली की अनेकरूपता मिलती है। वाक्य रचना मे काति के साथ साथ व्यवस्था और स्वच्छता आ गई है। इस समय अनेक लेखक साहित्य के भिन्न भिन्न क्षेत्रो मे गद्य की पुष्टि कर रहे है। सुविधा के लिए इन विभिन्न विभागो का हम सक्षिप्त दिग्दर्शन कराते है।

कथा साहित्य

कथा साहित्य की ओर हरिश्चन्द्र काल मे ही ध्यान दिया गया था। पर सर्वप्रथम सफल उपन्यासकार देवकी नदन खत्री हुए। इनकी 'चद्रकाता' और 'चद्रकाता सतति' का वडा प्रचार हुआ। अन्य भापा-भापियो ने भी इन्हे पढने के लिए हिन्दी सीखी थी। इनकी भापा सरल और स्पष्ट है। घटना वैचित्र्य पर इनकी दृष्टि थी। तिलस्म के उपन्यास का भी युग कुछ समय तक रहा। फिर किशोरीलाल गोस्वामी उपन्यास के व्यापक समुदाय के साथ आए। किशोरीलाल के उपन्यासो मे समाज के सजीव चित्र, वासना का रूप रग और चित्ताकर्षक वर्णन है। चरित्र-चित्रण को छोड कर इतिवृत्त पर ही इनका ध्यान रहा है। गोपालराम गहमरी के जासूसी

उपन्यासो का भी कुछ समय तक प्रवाह रहा।' वस्तुत प्रेमचदजी के आगमन के साथ ही चरित्र-चित्रण, वस्तु-विन्यास और भाषा-सौष्ठव संगठित हुआ। सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्य से इनके उपन्यास रचे गए हैं जिनमें ग्राम्य-जीवन का अच्छा चित्र है। उर्दू के सम्पर्क मे रहने के कारण प्रेमचदजी की भाषा बडी मुहाविरेदार है। उसमे स्फूर्ति और बल है। 'चद्रकाता' का मनोविनोदी पाठक इनके उपन्यासो से श्रद्धा भाव मे दीक्षित हो चुका है।

वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, जैनेन्द्रकुमार आदि ने अपने उपन्यासो के द्वारा गद्य को विभिन्न शैलियो से परिपुष्ट किया है। प्रसाद, निराला, सियारामशरण गुप्त एव भगवतीचरण वर्मा भी श्रेष्ठ उपन्यासकार है। प्रसाद की लाक्षणिकता से परिपूर्ण रसात्मक भाषा ने गद्य को नई शैली और शक्ति प्रदान की है।

कहानी इस युग की साहित्यिक अभिव्यक्ति की प्रमुख साधन है। इसकी कला बहुत विकसित हो चुकी है। प्रसाद ने विवेकपूर्ण यथार्थवाद मे मौलिक कहानियो का सूत्रपात किया। प्रेमचद, सुदर्शन, प्रसाद, कौशिक, जैनेन्द्र, यशपाल, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उषादेवी मित्रा, विनोदशकर व्यास, उग्र, अज्ञेय आदि श्रेष्ठ कहानी लेखक हैं। चरित्र-चित्रण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, मार्मिक कथोपकथन और उपयुक्त वातावरण द्वारा कहानी ने अपनी कलाकोटि तो सजाई ही है पर गद्य भी उससे प्रसरित हो कर शक्तिसम्पन्न हुआ है। लोक शिक्षण के उद्देश्य से रूसी कहानियो का भी प्रभाव पड रहा है।

नाटक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सूत्रधार, प्रस्तावना, भरतवाक्य आदि के साथ प्राचीन शैली के नाटक प्रस्तुत करके मानो हिन्दी नाटक को जन्म दिया

था। इनके समय मे हिन्दी रग-मच ने कुछ उत्साह दिखाया था पर आगे चल कर पारसी कम्पनियो के आश्रय मे ही हिन्दी का रग मच भद्देपन से सुसज्जित हुआ। समय समय पर काशी, प्रयाग, कलकत्ता एव अन्य स्थानों पर साहित्यसमितियो द्वारा नाटको का अभिनय होता रहा है किंतु हिन्दी अपने रग-मच को विकसित नही कर पाई है। फलत काव्य की दृष्टि से तो हमारे पास अच्छे नाटको की सख्या है पर अभिनेय नाटक कम है। चरित्र-चित्रण और कथोपकथन के उत्कृष्ट विधान को लेकर जयशकर प्रसाद हिन्दी नाटक साहित्य मे वहुत सफल हुए है। प्राच्य और पाश्चात्य नाट्य प्रणाली के समन्वय मे प्रसाद जी की कला वहुत निखरी है। नारी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन उनमे है। उनकी शैली भावावेश प्रधान है जो कही कही नाटकीय दृष्टि से अस्वाभाविक भी है। उसमे उच्च कोटि का गद्य-काव्य है।

गोविन्दवल्लभ पत, वद्रीनाथ भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी आदि की नाट्य शैली अधिक व्यावहारिक है। कालिदास और भवभूति के सस्कृत नाटको के अनुवाद एव बँगला के प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय के नाटको के अनुवाद भी नाटक के प्रथम उत्थानकाल मे प्रकट हुए है। इबसन और शॉ से अनुभूति ले कर समस्या-नाटक की प्रवृति भी आई है। देवलोक से उतर कर देहात-हाट आदि के सघर्षमय चित्र लाए गए है। राजसभा के स्थान पर नग्न दरिद्र के पास नाटककार पहुँच गया है। रगमच हमारा घर बन गया है।

सस्कृत मे भॉड प्रहसन इत्यादि कई प्रकार के एकाकी है किन्तु आधुनिक काल मे पाश्चात्य एकाकियो की देखादेखी हिन्दी मे भी एकाकियो की रचना होने लगी है। साहित्यिक कहानी की भॉति एकाकी मे हमे जीवन के मार्मिक अश की एक सवेदनापूर्ण झलक मिलती है। चरित्र सघर्ष, अदम्य प्रवाह और उद्विग्नता की अतरध्वनि के साथ नये एकाकी प्रतिष्ठित हुए

है। इनमें कार्य व्यापार कम मनोवैज्ञानिक सलाप विशेष होता है. गीत, कविता अथवा रगमच की सजावट छोड कर यथार्थता का वातावरण लेखक लाता है। थोडे ही दिनो मे एकाकी का वडा विकास हो गया है भुवनेश्वर प्रसाद, उदयशकर भट्ट और डा० रामकुमार वर्मा वडे सफल एकाकीकार है। इनके एकाकी प्राय रगमच पर अवतरित होते रहते हैं। जी० पी० श्रीवास्तव और अन्नपूर्णानन्द ने विनोद प्रहसन साहित्य की वृद्धि मे योगदान दिया है।

निवंध

प्रारभिक स्थिति मे तो विचारो की तार्किकता मे रहित अनायास प्रस्फुटित वाक्य-समूह के रूप मे निवध मिलता है। जो जी में आया उसे लिख दिया गया। मिश्रजी और प्रेमघन के निवधो मे हमे यह वात मिलती है। इनमे शव्दो की उछल-कूद और व्यक्तिगत प्रवृत्ति की झलक है। फिर आगे विचारो की तार्किक शृखलावद्ध योजना के साथ भी निवध विकसित हुआ। वालकृष्ण भट्ट जी ने सोद्देश्य निवध लिखे थे। अँगरेजी शव्द या पूर्वीपन के वीच में उनकी सस्कृत शव्दावली एव शिष्ट हास्य निवध को दिशा दिखाने मे सफल हुए। पहले पहल अँगरेजी के भावो और विचारो का आधार लेकर सस्कृत सूक्तियो के सहारे चरित्र सुधार सवधी निवध लिखे गए थे। आगे चल कर दार्शनिक, सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक आदि विचारो की समीक्षा मे सपन्न निवध भी लिखे जाने लगे। कही भावावेश की तो कही गभीर विवेचना की शैली निवधो मे मिलती है। श्यामसुन्दरदास, महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा रामचन्द्र शुक्ल आदि ने निवध को वडी प्रौढता प्रदान की है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति के साथ सरदार पूर्ण सिंह ने लाक्षणिकता प्रधान भावमय शैली प्रगट की है। गुलावराय जी ने मनोवैज्ञानिक विवेचन के साथ समाज नीति पर अच्छे निवध लिखे है

जिनमे सूक्ष्म भावो की स्पष्टता के लिए दृष्टातो का आधार भी लिया गया है। वियोगी हरि, नन्ददुलारे बाजपेयी, नगेन्द्र, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, निराला, इलाचन्द्र जोशी इत्यादि हमारे निबंध साहित्य की श्री-वृद्धि कर रहे है।

इतिहास एव ऐतिहासिक निवध शोध और प्रमाण से परिपूर्ण तथ्यो को ले कर रचे जाते है। इस क्षेत्र मे बडे परिश्रम और लगन से कार्य करने वाले सर्वप्रथम एव श्रेष्ठतम इतिहासलेखक प० गौरीशकर हीराचद ओझा है। राजस्थान का अत्यन्त खोजपूर्ण विस्तृत इतिहास इन्होने लिखा है। विश्वेश्वरनाथ रेऊ, गगाप्रसाद मेहता, जयचद विद्यालकार, सत्यकेतु विद्यालकार इत्यादि लेखको ने तर्क और विवेचन के साथ ऐतिहासिक साहित्य प्रस्तुत किया है। राजनीति शास्त्र मे भगवानदास केला का कार्य महत्वपूर्ण है। यात्रा, जीवनी और पत्रात्मक साहित्य भी प्रचुर मात्रा मे अत्र प्राप्त है।

विज्ञान की कसौटी पर ही आज राष्ट्र उच्च माने जाते है। प्रयाग की विज्ञान परिषद वैज्ञानिक साहित्य के सृजन मे बहुत समय से कार्य कर रही है। विविध पत्र-पत्रिकाओ मे वैज्ञानिक निवध प्राय प्रकाशित होते रहते है, जिनमे गद्य शैली का गवेषणात्मक स्वरूप बराबर विकसित हो रहा है।

गद्य काव्य

दृश्य जगत के विविध पदार्थो अथवा जीवन की रागात्मक दशाओ से प्रेरणा ग्रहण कर भावावेग की शैली मे गद्य काव्य की सृष्टि हुई है। इसमें ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, मूर्तिमत्ता एव उपचार वक्रता का समावेश होता रहता है। अनन्त, असीम और अव्यक्त को लक्ष्य कर अन्योक्ति-प्रणाली का भी इसमे आधार लिया जाता है, अभिव्यजना का कौशल भाव-

सघर्ष की साकेतिकता मे होता है। चतुरसेन शास्त्री, राय कृष्णदास, वियोगीहरि और दिनेशनन्दिनी के नाम इस दिशा मे उल्लेखनीय है। भावात्मक निबध क्षेत्र मे ध्वनि व्यजना से परिपूर्ण वियोगी हरि की शैली अद्वितीय है।

कभी कभी गद्य काव्य के आवरण मे निरर्थक वाग्जाल भी बहुत मिलता है। 'ओह', 'आह', 'अहे' के साथ शून्य सूचक रिक्तस्थान और व्यर्थ के विस्मय बोधक चिन्हो से सम्पन्न गद्य मे कूडा कचरा भी दिखाई देता है। भावुकता को अधिक मधुर और मनोरम सिद्ध करने के लिए गद्य गीत शीर्षक भी कभी-कभी व्यर्थ प्रयुक्त होता है। गद्य काव्य को गीत तो कहा ही नही जा सकता। गीतो मे स्वर, लय, यति, गति, तुक इत्यादि का ध्यान रखना पडता है। गद्य काव्य गेय पद नही है, लेखक की तन्मयता अथवा आत्म विस्मृति का सूचक भावात्मक गद्य है।

आलोचना

आलोचना के प्रारम्भिक युग मे विषय के प्रतिपादन, विवेचन पर ध्यान कम गया था। दोप-दर्शन की व्यग्यप्रधान तीव्र शैली अथवा गुण-माहात्म्य की सराहनापूर्ण 'वाह-वाही' शैली प्रमुख थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने व्याकरण की अशुद्धियाँ दिखला कर भाषा के सस्कार की बहुत रक्षा की है। उच्छृखल लेखको की स्वच्छदता को अनुशासित कर सुव्यवस्थित कलामय गद्य के विकास मे द्विवेदी जी की आलोचना ने परम श्लाघ्य कार्य किया है। तुलनात्मक आलोचना के प्रसग मे मिश्रबन्धु, भगवानदीन, पद्मसिह शर्मा और कृष्ण विहारी मिश्र के नाम प्रमुख है। शर्मा जी सस्कृत और फारसी के अच्छे विद्वान् थे। उनकी आलोचना मे सस्कृत और फारसी की शब्दावली भावुक उद्‌गारो के मध्य बडी सजीवता से अकित है। उनकी भापा मे गम्भीरता के साथ साथ क्रीडा-शीलता और चपलता है।

आलोच्य विपय की सम्यक् समीक्षा का आदर्श रख कर कवीर, तुलसी, जायसी, सूर आदि पर महत्वपूर्ण आलोचनाएँ लिखी गई ह । श्यामसुदरदास जी ने 'साहित्यालोचन' की रचना कर तारतम्य के साथ आलोचना की विवेचनात्मक शैली प्रगट की है। आलोचना के क्षेत्र मे प० रामचन्द्र शुक्ल का कार्य आचार्यवत् हुआ है। वे एक नई आलोचना-पद्धति के प्रवर्त्तक है। तुलसी, जायसी और सूर पर लिखे हुए उनके आलोचनात्मक प्रवधो मे प्राचीन रस पद्धति के साथ पाश्चात्य आलोचना प्रणाली का सुन्दर समन्वय मिलता है । कवि के व्यक्तित्व और उसकी परिस्थिति का निदर्शन कराते हुए अतरग और वहिरग के सामजस्य मे उन्होने हिन्दी आलोचना को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया है । शुक्लजी की आलोचना-पद्धति का हिन्दी साहित्य मे वडा मान है। डा० पीताम्वर दत्त वडथ्वाल, कृष्णशकर शुक्ल, डा० केसरीनारायण शुक्ल, नददुलारे वाजपेयी, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा आदि की आलोचनाए शुक्लजी के प्रभाव का ही स्मरण दिलाती है। विभिन्न विश्वविद्यालयो मे डी० लिट्० अथवा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए समय समय पर आलोचनात्मक प्रवध प्रस्तुत होते रहते हे जिनसे वैज्ञानिक पद्धति की विशुद्ध समीक्षा का आदर्श ऊँचा होता जा रहा है । डा० माताप्रसाद गुप्त और डा० श्रीकृष्णलाल के तद्सवधी प्रवध प्रसिद्ध है। चद्रवली पाण्डेय, गुलावराय एव नगेन्द्र भी आलोचना क्षेत्र मे अच्छा कार्य कर रहे है। साम्यवादी मापदड से आलोचना को कुछ नई गतिविधि देने मे शिवदान सिह चौहान, डा० रामविलास शर्मा के नाम प्रमुख है। इन्होने साहित्यिक मीमासा मे मार्क्स के समाज-दर्शन को मापदड ठहराया है । भापा शास्त्र के प्रसग मे डा० श्याम सुदरदास, डा० धारेन्द्र वर्मा, डा० मगलदेव शास्त्री और डा० वावूराम सक्सेना ने महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे है, जिनमे विचारो के उपयुक्त प्रकाशन द्वारा गद्य वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक शक्तिसम्पन्न हुआ है।

नूतन परिस्थिति

आज का लेखक धरती पर रहता है समाज के दु ख-द्वन्द्वो मे सम्मिलित होकर दरिद्रता और भुखमरी को झेलता है। वह समाज के साथ चलता है, उन्हे चित्रित करता है जो पग पग पर ठोकर खाते है, जिनके मस्तक पर कष्ट-पीडा का तिलक है और शरीर पर ठठरी की छाप है। समाज की विशृखलताओ से उत्पन्न जीवन की जटिलता इस समय के साहित्य मे प्राप्त है।

अव हिन्दी गद्य अत्यन्त व्यापक हो गया है। सभी प्रकार के भावो की व्यजना शक्ति उसमे है। देश मे लोकतत्र की स्थापना हो चुकी है और सन् १९५० मे भारतीय ससद ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोपित कर दिया है। अत हिन्दी का भविष्य तो उज्ज्वल ही है। उत्तर-प्रदेश, मध्य प्रदेश, मध्य भारत, विहार आदि प्रान्तो मे शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही हो गया है। साहित्य, कला, व्यापार, वाणिज्य, इतिहास, राजनीति, विज्ञान आदि विविध विषयो मे शोध और चिंतन पूर्ण ग्रन्थ क्रमश प्रकट हो रहे हैं। विज्ञान और उसके विनियोग सम्वन्धी साहित्य मे अवश्य कुछ अभाव है। उद्योग-धन्धे का साहित्य भी प्राय शून्य है। न्याय-विधान मे भी बहुत कार्य शेष है। उत्तरदायित्व हिन्दी भाषा-भाषियो पर है। हिन्दी की भाव-प्रकाशन शक्ति मे कोई सदेह नही है। आवश्यकता है सलग्नता और व्रतपरायणता के साथ कार्य करने की। हमे विश्वास है लोकतत्र की आकाक्षाओ मे भाग लेते हुए राष्ट्रीयता की प्रतीक हिन्दी शीघ्र ही सव प्रकार से सम्पन्न हो उठेगी।'

—गुरु प्रसाद टंडन

चन्द्रावली का कृष्णप्रेम

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

इतिहासप्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंश में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म काशी में सं० १९०७ में हुआ और मृत्यु सं० १९४२ में हुई। आपके पिता श्री गोपालचन्द्र भी श्रेष्ठ कवि थे। हरिश्चन्द्र जी बाल्यकाल से ही अत्यत प्रतिभाशाली थे। इन्हे पिता का आशीर्वाद भी मिला था कि भविष्य मे एक श्रेष्ठ कवि होगे। दैवी शक्ति और बहुपार्श्वी विद्वत्ता से इन्होने शीघ्र ही बड़ा यश प्राप्त किया। बंग साहित्य की प्रवृत्तियो से स्फूर्ति लेकर पहले इन्होने 'विद्यासुन्दर' नाटक अनूदित किया। तदनन्तर 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र बालाबोधिनी' आदि पत्र पत्रिकाए इन्होने निकाली। आधुनिक हिन्दी गद्य का संस्कार इनके द्वारा किया गया और हिन्दी की शृंगारिक कविता का संशोधन भी हुआ।

नाटकों का अभाव देखकर इन्होने लगन के साथ कई नाटको की रचना की। इनमें सत्य हरिश्चन्द्र, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, चन्द्रावली, मुद्राराक्षस आदि प्रमुख है। यद्यपि इनकी नाट्य रचना ही सबसे अधिक है तथापि साहित्य के सर्वतोमुखी विकास में वे दत्तचित्त थे। वे नवयुग के प्रवर्तक है; देश-प्रेम की चेतना के वे अग्रदूत है। काव्य, नाटक, धर्म आदि विविध विषयो पर प्रगल्भ ग्रन्थ लिखे है। कवियो और विद्वानो का वे बड़ा सम्मान करते थे और उनकी दानवीरता लोकविख्यात है। अपनी संपत्ति लुटाकर वे फक्कड़ से हो गए थे।

वे वल्लभ कुल के शिष्य थे। उदारता के साथ अंध विश्वास और कुरीतियो के कट्टर आलोचक भी वे रहे हैं। वस्तुतः भारतेन्दु को पाकर हिन्दी म्रियमाण दशा से उन्नत हो उठी। उनकी कला का विशेष माधुर्य प्राचीन और नवीन का मनोरम सामंजस्य है।

(स्थान-तालाब के पास एक बगीचा)
(समय-तीसरा पहर, गहिरे बादल छाये हुये)
(झूला पड़ा है, कुछ सखी झूलती, कुछ इधर-उधर फिरती है)
(चन्द्रावली, माधवी काममंजरी, विलासिनी, इत्यादि)

कामिनी—सखी! देख बरसात भी अबकी किस धूमधाम से आई है, मानो कामदेव ने अबलाओ को निर्बल जान कर इनके जीतने को अपनी सेना भिजवाई है। धूप से चारो ओर से घूम-घूम कर बादल परे के परे जमाये, बग-पगति का निशान उड़ाये, लपलपाती नगी तलवार सी बिजली चमकाते, गरज गरज कर डराते, बान के समान पानी बरखा रहे है और इन दुष्टो का जी बढाने को मोर करख सा कुछ अलग पुकार-पुकार गा रहे है। कुल की मर्यादा ही पर इन निगोड़ो को चढाई है। मनोरथो से कलेजा उमगा आता है और काम के उमंग जो अग-अग में भरी है उनके निकले बिना जी तिलमिलाता है। ऐसे बादलो को, देख कर कौन लाज की चद्दर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है।

माधुरी—विशेष कर वह जो आप कामिनी हो। (हँसती है)

कामिनी—चल, तुझे हँसने की पडी है। देख, भूमि चारो ओर हरी भरी है नदी-नाले, बावली-तालाब सब भर गये। पक्षी लोग पर समेटे पत्तो की आड़ मे चुपचाप सकपके से होकर बैठे है। बीरबहूटी

और जुगनू, पारी-पारी रात और दिन को इधर-उधर बहुत दिखाई पडते है। नदियो के करारे धमाधम टूट कर गिरते है। सर्प निकल निकल अशरण से इधर-उधर भागे फिरते है। मार्ग बन्द हो रहे है। परदेशी जो जिस नगर मे है वही पडे-पडे पछ ता रहे है, आगे बढ नही सकते। वियोगियो को तो मानो छोटा प्रलय-काल ही आया है।

माधुरी—छोटा क्यो, बड़ा प्रलय-काल आया है। पानी चारो ओर से उमड ही रहा है। लाज के बडे-बडे जहाज गारद हो चुके, भया फिर वियोगियो के हिसाब तो ससार डुबा ही है, तो प्रलय ही ठहरा।

कामिनी—पर तुझको तो वटकृष्ण का अवलम्ब है न? फिर तुझे क्या, भाडीर वट के पास उस दिन खडी बात कर ही रही थी! गए हम।

माधुरी—और चन्द्रावली ?

कामिनी—हाँ, चन्द्रावली बिचारी तो आप ही गई बीती है। उसमे भी अब तो पहरे मे है, नजरबन्द रहती है, झलक भी नही देखने पाती, अब क्या—

माधुरी—जाने दे नित्य का झखना। देख, फिर पुरवैया झकोरने लगी और वृक्षो से लपटी लताएँ फिर से लरजने लगी। साडियों के आँचल और दामन फिर उडने लगे और मोर लोगो ने एक साथ फिर शोर किया। देख, यह घटा अभी गरज गई थी पर फिर गरजने लगी।

कामिनी—सखी! वसन्त का ठंढा पवन और सरद की चाँदनी से राम राम कर के वियोगियो के प्राण बच भी सकते है, पर इन काली काली घटा और पुरवैया के झोके तथा पानी के एकतार झमाके से तो कोई भी न बचेगा।

माधुरी—तिस मे तू तो कामिनी ठहरी, तू वचना क्या जाने ।

कामिनी—चल ठठोलिन। तेरी आँखों में अभी तक उस दिन की खुमारी भरी है, इसीसे किसी को कुछ नही समझती। तेरे सिर पीते तो मालूम पडे।

माधुरी—वीती है मेरे सिर। मै ऐसी कच्ची नही कि थोडे में बहुत उबल पडूँ।

कामिनी—चल, तू हुई है क्या कि न उबल पडेगी। स्त्री की बिसात ही कितनी। बडे बडे योगियों के ध्यान इस बरसात में छूट जाते है। कोई योगी होने ही पर मन ही मन पछताते है, कोई जटा पटक कर हाय हाय चिल्लाते है और बहुतेरे तो तूमडी तोड तोड कर योगी से भोगी हो ही जाते है।

माधुरी—तो तू भी किसी सिद्ध से कान फुकवाकर तूमडी तोडवा ले।

कामिनी—चल! तू क्या जाने इस पीर को। सखि! यही भूमि और यही कदम कुछ दूसरे ही हो रहे है और यह दुष्ट बादल मन ही दूसरा किये देते है। तुझे प्रेम हो तब सूझे। इस आनन्द की धुन में संसार ही दूसरा, एक विचित्र शोभा वाला, और सहज काम जगाने वाला मालूम पडता है।

माधुरी—कामिनी! पर काम का दावा है इसी से हेर-फेर उसी को बहुत छेडा करता है।

(नेपथ्य में बारम्बार मोर कूकते है)

कामिनी—हाय-हाय! इस कठिन कुलाहल से बचने का उपाय एक विषपान ही है। इन दईमारों का कूकना और पुरवैया का झकोर कर चलना, यह दो बाते बडी कठिन है। धन्य है वे जो ऐसे समय मे रग रग के कपड़े पहिने, ऊँची ऊँची अटारियों पर चढी, पीतम के सग घटा और हरियाली देखती है वा बगीचो, पहाडो और मैदानो मे गलबाही डाले फिरती है। दोनो परस्पर पानी बचाते

है और रगीन कपडे निचोड कर चौगुना रंग बढाते है। झूलते है झुलाते है, हँसते है हँसाते है, भीगते है भिगाते है, गाते है गवाते है, और गले लगते है लगाते है।

माधुरी—और तेरो न कोई पानी बचाने वाला, न तुझे कोई निचोडने वाला, फिर चौगुने की कौन कहे ड्योढा सवाया तो तेरा रग वढेहीगा नही।

कामिनी—चल लुच्चिन! जाके पायँ न भई बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।

(बात करती करती पेड़ की आड में चली जाती है)

माधवी—(चद्रावली से) सखी! श्यामला का दर्शन कर; देख, कैसी सुहावनी मालूम पडती है। मुखचन्द्र पर चूनरी चुई पडती है। लटे सगवगी हो कर गले मे लपट रही है। कपडे अंग मे लपट गये है। भीगने से मुख का पान और काजल सब को एक विचित्र शोभा हो गई है।

चद्रावली—क्यो न हो! हमारे प्यारे की प्यारी है। मै पास होती तो दोनों हाथो से इनकी वलैया लेती और छाती से लगाती।

काममजरी—सखी, सचमुच आज तो इस कदब के नीचे रग वरस रहा है। जैसी समा बँधी है वैसी ही झूलने वाली है। झूलने मे रग रग की साडी की अर्द्ध चन्द्राकार रेखा इन्द्रधनुष की छवि दिखाती है। कोई सुख से बैठी झूले की ठढी ठढी हवा खा रही है, कोई गाँती बाँधे लाँग कसे पेग मारती है, कोई गाती है, कोई डर कर दूसरी के गले मे लपट जाती है, कोई उतरने को अनेक सौगद देती है, पर दूसरी उसको चिढाने को झूला और भी झोके से झुला देती है।

माधवी—हिंडोरा ही नही झूलता। हृदय मे पीतम को झुलाने के मनोरथ

और नैनौ मे पिया की मूर्ति भी भूल रही है। सखी! आज साँवला ही की मेहदी और चूनरी पर तो रग है। देख, बिजुली की चमक मे उसकी मुख-छवि कैसी सुन्दर चमक उठती है और वैसे पवन भी वार-वार घूघट उलट देता है। देख—

हूलति हिये में प्रानप्यारे के विरह-सूल
फूलति उमंग भरी झूलति हिंडोरे पै।
गावति रिझावति हँसावति सबन हरि—
चन्द चाव चौगुनो बढ़ाइ घन घोरे पै॥
वारि वारि डारौ प्रान हँसनि मुरनि बतरान
मुह पान कजरारे दृग डोरे पै।
ऊजरी घटा मैं देखि दूनरी लगी है आहा
कैसी आजु चूनरी फबी है मुख गोरे प॥

चन्द्रावली—सखियो! देखो कैसी अँधेर और गजब है कि या रुत मैं सब अपनो मनोरथ पूरो करैं और मेरी यह दुरगति होय! भला काहुवै तो दया आवती। (आँखो मे आँसू भर लेती है)

माधवी—सखी! तू क्यो उदास होय है। हम सब कहा करें, हम तो आज्ञा-कारिणी दासी ठहरी, हमारो का अखत्यार है। तऊ हम मैं सो कोऊ कछू तोहि नायँ कहैं।

काममंजरी—भलो सखी, हम याही कहा कहैंगी। याहू तो हमारी छोटी स्वामिनी ठहरी।

विलासिनी—हाँ सखी! हमारी तो दोऊ स्वामिनी है। सखी! बात यह है कै खरावी तो हम लोगन की है, ये दोऊ फेर एक की एक होयँगी। लाठी मारवे सो पानी थोरो हूँ जुदा हो जायगो,

पर अभी जो सुन पावे कि ढिमकी सखी ने चन्द्रावलियै अकेलि छोडि दीनी तो फेर देखौ तमासा।

माधवी—हम्बै वीर। और फिर कामहू तौ हमी सब विगारैं। अब देखि कौन तै स्वामिनी सो चुगली खाई। हमारेई तुमारे मे सो वहू है। सखी चद्रावलियै जो दु ख देयगी वह आप दु ख पावैगी।

(चन्द्रावली नाटिका से)

कल्पना-शक्ति

पंडित बालकृष्ण भट्ट

भट्टजी का जन्म प्रयाग के एक उच्च ब्राह्मण कुल में स० १९०१ में हुआ था और निधन सं० १९७१ में हुआ। घर पर इन्होने संस्कृत का अध्ययन किया था। मिशन स्कूल में इनका अध्ययन धर्मनिष्ठा के कारण अधिक काल तक न चल सका। कुछ काल तक ये अध्यापक भी रहे है परन्तु अन्त में यह कार्य भी छोडकर एकात साहित्यसेवा में ये उतर आए। इन्होने 'हिन्दी प्रदीप' के संपादन द्वारा ३२ वर्षों तक साहित्य और समाज की सेवा की है। वस्तुतः भट्ट जी ही हिन्दी के प्रथम निबन्धलेखक थे। 'साहित्य-सुमन', 'सौ अजान एक सुजान', 'नूतन ब्रह्मचारी', 'रेल का विकट खेल' आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएं है।

सामाजिक, शिक्षाप्रद एवं साहित्यिक आदि कई विषयो पर भट्ट जी के निबन्ध मिलते है। इनका व्यक्तित्व निबन्धो में अकित है। अंग्रेजी के उच्च कोटि के निबन्ध-साहित्य को देखकर भट्ट जी दृढ़ लक्ष्य के साथ गद्य साहित्य की वृद्धि में संलग्न रहे है। गद्य को शुद्ध करके विदग्ध साहित्य के लिए उपयुक्त बनाने में उन्होने महत्वपूर्ण कार्य किया था। यद्यपि इनका गद्य मिश्रित है पर ये संस्कृत शैली के ही पक्षपाती रहे है। उर्दू फारसी आदि के चुस्त मुहाविरो के साथ शालीनतापूर्ण शिष्ट हास्य और व्यग्य की योजना इनकी अपनी विशेषता है। ओज और प्रौढता इनकी शैली में सर्वत्र परिलक्षित है, यद्यपि कही कही कुछ प्रान्तिकता भी है।

कल्पना-शक्ति

मनुष्य की अनेक मानसिक शक्तियो मे कल्पना-शक्ति भी एक अद्भुत शक्ति है। यद्यपि अभ्यास से यह शतगुण अधिक हो सकती है, पर इसका सूक्ष्म अकुर किसी-किसी के अत करण मे आरभ ही से रहता है, जिसे प्रतिभा के नाम से पुकारते है और जिसका कवियो के लेख मे पूर्ण उद्गार देखा जाता है। कालिदास, श्रीहर्ष, शेक्सपीयर, मिल्टन प्रभृति कवियो की कल्पना-शक्ति पर चित्त चकित और मुग्ध हो, अनक तर्क-वितर्क की भूल-भुलैया मे चक्कर मारता, टकराता, अत को इसी सिद्धात पर आकर ठहरता है कि वह कोई प्राक्तन सस्कार का परिणाम है या ईश्वर-प्रदत्त शक्ति (Genius) है। कवियो का अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा ब्रह्मा के साथ होड करना कुछ अनुचित नही है, क्योकि जगत्-स्रष्टा तो एक ही वार जो कुछ वन पडा, सृष्टि-निर्माण-कौशल दिखला कर आकल्पात फरागत हो गए, पर कविजन नित्य नई-नई रचना के गढत से न-जाने कितनी सृष्टि-निर्माण-चातुरी दिखलाते रहते है।

यह कल्पना-शक्ति कल्पना करने वाले के हृद्गत भाव या मन के परखने की कसौटी या आदर्श है। शात या वीर प्रकृति वाले से शृगार-रस-प्रधान कल्पना कभी न वन पडेगी। महाकवि मतिराम और भूषण इसके उदाहरण है। शृगार-रस मे पगी जयदेव की रसीली तवियत के लिए दाख और मधु से भी अधिकाधिक मधुर गीतगोविंद ही की रचना विशेष उपयुक्त थी। राम-रावण या कर्णार्जुन के युद्ध का वर्णन कभी उनसे न वन पडा। यावत्-मिथ्या और दरोग की किवलेगाह इस कल्पना-पिशाचिनी का कही ओर-छोर किसी ने पाया है! अनुमान करते-करते हैरान गौतम-से मुनि "गोतम" हो गए। कणाद किनका खा-खाकर तिनका वीनने लगे, पर उन्होने मन की मनभावनी कन्या-कल्पना का पार न पाया। कपिल वेचारे पचीस तत्त्वो की कल्पना करते-करते "कपिल" अर्थात् पीले पड़ गए।

व्यास ने इन तीनो महा-दार्शनिको की दुर्गति देख मन मे सोचा, कौन इस भूतनी के पीछे दौडता फिरे; यह सपूर्ण विश्व, जिसे हम प्रत्यक्ष देख-सुन सकते है, सब कल्पना-ही-कल्पना, मिथ्या, नाशवान और क्षण-भगुर है, अतएव हेय है। उन्ही की देखादेखी बुद्धदेव ने भी अपने बुद्धत्व का यही निष्कर्ष निकाला कि जो कुछ कल्पना-जन्य है, सब क्षणिक और नश्वर है। ईश्वर तक को उन्होने इस कल्पना के अतर्गत ठहरा कर शून्य अथवा निर्वाण ही को मुख्य माना। रेखागणित के प्रवर्त्तक उक्लैदिस (यूक्लिड) ज्यामिती की हरएक शकल मे बिदु और रेखा की कल्पना करते-करते हमारे सुकुमार-मति इन दिनो के छात्रो का दिमाग ही चाट गए। कहाँ तक गिनावे, सपूर्ण भारत-का-भारत इसी कल्पना के पीछे गारत हो गया, जहाँ कल्पना (Theory) के अतिरिक्त कर के दिखाने योग्य, (Practical) कुछ रहा ही नही। योरप के अनेक वैज्ञानिको की कल्पना को शुष्क कल्पना से कर्त्तव्यता (Practice) मे परिणत होते देख यहाँ वालो को हाथ मल-मल पछताना और 'कलपना' पडा।

प्रिय पाठक! यह कल्पना बुरी बला है। चौकस रहो, इसके पेच में कभी न पडना, नही तो पछताओगे। आज हमने भी इस कल्पना की कल्पना मे पड बहुत-सी झूठी-झूठी कल्पना कर आपका थोडा-सा समय नष्ट किया, क्षमा करियेगा।

वृद्ध

पंडित प्रतापनारायण मिश्र

पं० प्रतापनारायण मिश्र का जन्म सं० १९१६ में कानपुर के बैजे गाँव में हुआ था और निधन सं० १९५४ में हुआ। इन्होने साधारण शिक्षा प्राप्त की थी किन्तु अपने परिश्रम से अंगरेजी, उर्दू, फारसी का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आप बहुत कोमल प्रकृति के मनमौजी व्यक्ति थे। विनोदप्रियता उनके रग रग में भरी थी। हास्य और व्यंग्य वैचित्र से पूर्ण रचनाओं के कारण इनकी ख्याति है। भारतीय सस्कृति और हिन्दुत्व के ये उपासक थे। 'ब्राह्मण' पत्र का जीवन पर्यन्त आप संपादन करते रहे। गद्य और पद्य की बहुत सी पुस्तकें आपने लिखी है जिनमें से 'युगलांगुलीय', हठी हम्मीर आदि मुख्य है। इनकी गद्य शैली में देहाती कहावतो के साथ हास्य व्यग्य के मधुर छीटे है। कही कही कुछ व्याकरण दोष भी है। घनिष्ठता की मात्रा बहुत अधिक है।

इन महापुरुष का वर्णन करना सहज काम नही है। यद्यपि अब इनके किसी अग मे कोई सामर्थ्य नही रही अत इनसे किसी प्रकार की ऊपरी सहायता मिलना असभव सा है, पर हमे उचित है कि इनसे डरे, इनका समान करे और इनके थोडे से बचे-खुचे जीवन को गनीमत जाने, क्योकि इन्होने अपने बाल्यकाल मे विद्या के नाते चाहे काला अक्षर भी न सीखा हो, युवावस्था मे चाहे 'एक पैसा भी न कमाया हो तथापि ससार के ऊँच-नीच

का इन्हे हमारी अपेक्षा बहुत अधिक अनुभव है, इसी से शास्त्र की आज्ञा है कि—

"वयोधिक शूद्र भी द्विजाति के लिए माननीय है।"

यदि हममे बुद्धि हो तो इनसे पुस्तको का काम ले सकते है, वरच पुस्तक पढने से आँखो को तथा मुख को कष्ट होता है, न समझ पडने पर दूसरो के पास दौडना पडता है। पर इनसे केवल इतना कह देना बहुत है कि हाँ बाबा फिर क्या हुआ ? हाँ बाबा ऐसा हो तो कैसा हो ? बस बाबा साहब अपने जीवन-भर का आतरिक कोप खोलकर रख देगे। इसके अतिरिक्त इनसे डरना इसलिए उचित है कि हम क्या है हमारे पूज्य पिता दादा ताऊ भी इनके आगे के छोकडे थे। यदि यह बिगडे तो किसकी कलई नही खोल सकते ? किसके नाम पर गट्टा सी नही सुना सकते ? इन्हे सकोच किसका है ? वक्की के सिवा इन्हे कोई कलक ही क्या लगा सकता है ? जब यह आप ही चिता पर एक पाँव रक्खे बैठे है, कब्र मे पाँव लटकाए हुए है तब इनका कोई कर क्या सकता है ? यदि इनकी बाते-कुबाते हम न सहे तो करे क्या ? यह तनिक सी बात मे कष्टित और कुठित हो जायँगे और असमर्थता के कारण सच्चे जी से शाप देगे जो वास्तव मे बडे बडे तीक्ष्ण शस्त्रो की भाँति अनिष्टकारक होगा।

जब कि महात्मा कबीर के कथनानुसार मरी खाल की हाय से लोहा तक भस्म हो जाता है तब इनकी पानी-भरी खाल की हाय कैसा कुछ अमगल नही कर सके ! इससे यही न उचित है कि इनके सच्चे अशक्त अत करण का आशीर्वाद लाभ करने का उद्योग करे, क्योकि समस्त धर्म-ग्रथो मे इनका आदर करना लिखा है, सारे राजनियमो मे इनके लिए पूर्ण दड की विधि नही है। और सोच देखिए तो यह दया-पात्र जीव है क्योकि सब प्रकार पौरुष से रहित है, केवल जीभ नही मानती, इससे आँय-बाँय-शाँय किया करते है, या अपनी खटिया पर थूकते रहते है। इसके सिवा किसी का

कुछ बिगाडते ही नही है। हाँ इस दशा मे दुनिया के झझट छोड के भगवान् का भजन नही करते, वृथा चार दिन के लिए झूठी हाय हाय मे कुढते-कुढाते रहते है। यह बुरा है। पर इसके लिए क्यो इनकी निदा की जाय ?

आजकल बहुतेरे मननशील युवक कहा करते है कि बुड्ढे खबीसो के मारे कुछ नही होने पाता, वे अपनी पुरानी अकिल के कारण प्रत्येक देश-हितकारक नव-विधान मे विघ्न खडा कर देते है। हमारी समझ मे यह कहने वालो की भूल है, नही तो सब लोग एक से ही नही होते। यदि हिकमत के साथ राह पर लाए जायँ तो बहुत से बुड्ढे ऐसे निकल आवेगे जिनसे अनेक युवको को अनेक भाँति की मौखिक सहायता मिल सकती है। रहे वे बुड्ढे जो सचमुच अपनी सत्यानाशी लकीर के फकीर अथवा अपने ही पापी पेट के गुलाम है, वे पहले हुई कै जने ? दूसरे अब वह समय नही रहा कि उनके कुलक्षण किसी से छिपे हो । फिर उनका क्या डर है ? चार दिन के पाहुन कछुआ, मछली अथवा कीडो की परसी हुई थाली, कुछ अमरौती खाके आए है नही, कौवे के बच्चे हुई नही, बहुत जिएँगे दस वर्ष। इतने दिन मे मर-पच के दुनिया-भर का पीकदान बनके दस लोगो के तलवे चाटके अपने स्वार्थ के लिए पराए हित मे बाधा करेगे भी तो कितनी, सो भी जब देशभाइयो का एक बडा समूह दूसरे ढर्रे पर जा रहा है तब आखिर थोडे ही दिन मे आज मरे कल दूसरा दिन होना है। फिर उनके पीछे हम अपने सदुद्योगो मे त्रुटि क्यो करे ! जब थोडी सी घातो की जिन्दगी के लिए वे अपना बेढगापन नही छोडते तो हम अपनी बृहज्जीवनाशा मे स्वधर्म क्यो छोडे ? हमारा यही कर्तव्य है कि उनकी शुश्रूषा करते रहे, क्योकि भले हो या बुरे पर है हमारे ही । अत हमे चाहिए कि अदब के साथ उन्हे ससार की अनिन्यता अथवा ईश्वर, धर्म, देशोपकार एव बधु-वात्सल्य की सभ्यता का निश्चय कराते रहे। सदा समझाते रहे कि हमारे तो तुम बाबा ही हो। अगले दिनो के ऋषियो की भाँति विद्यावृद्ध, ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध

हो तो भी बाबा हो और बाबा लोगो की भाँति 'आपन पेट हाहू, मै ना देहौं काहू' का सिद्धान्त रखते हो तो भी वयोवृद्ध के नाते बाबा ही हो, पर इतना स्मरण रक्खो कि अब जमाने की चाल वह नही रही जो तुम्हारी जवानी मे थी। इससे उत्तम यह है कि इस वाक्य को गाँठी बाँधो कि चाल वह चल कि 'पसेमर्ग' तुझे याद करे। काम वह कर कि जमाने मे तेरा नाम रहे—नही तो परलोक मे बैकुठ पाने पर भी उसे थूक थूक के नरक बना लोगे, इस लोक का तो कहना ही क्या है। अभी थूक-खखार देख कुटुब वाले घृणा करते है, यदि वर्त्तमान करतूते विदित हो गई तो सारा जगत् सदा थुड थुड करेगा!

यो तो मनुष्य की देह ही क्या है, जिसके यावदवयव घृणामय है, केवल बनाने वाले की पवित्रता के निहोरे श्रेष्ठ कहलाते है, नही तो निरी खारिज खराब हाल खाल की खलीती है, तिस पर भी उस अवस्था मे जब कि—

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलित.,
समाना स्वर्याता तदपि सुहृदो जीवितसमा।
शनैर्यष्ट्युत्थान घनतिमिररुद्धेपि नयने,
अहो दुष्ट कायस्तदपि मरणापायचकित ॥

यदि भगवच्चरणानुसरण एव सदाचरण न हो सका तो हम क्या है राह चलनेवाले तक धिक्कारेगे और कहेगे कि—"कहा धन धामै धरि लेहुगे सरा मै भए जीरन तऊ रामै न भजत हो'—यदि समझ जाओगे तो अपना लोक-परलोक बनाओगे, दूसरो के लिए उदाहरण काम मे लाओगे, नही तो हमे क्या है, हम तो अपनी वाली किए देते है, तुम्ही अपने किए का फल पाओगे। लोग कहते है कि बारह-बरस वाले को वैद्य क्या है, तुम तो परमात्मा की दया से पँचगुने छगुने दिन भुगता बैठे हो, तुम्हे तो चाहिए कि दूसरो को समझाओ; पर यदि स्वय कर्त्तव्याकर्त्तव्य न समझो तो तुम्हे तो क्या कहे। हमारी समझ को धिक्कार है जो ऐसे वाक्यरत्न ऐसे कुत्सित ठौर पर फेका करती है।

भारतीय चित्रकला

डा० गौरीशकर हीराचंद ओझा

ओझाजी का जन्म स० १९२० में सिरोही राज्य के रोहिडा गांव में हुआ। इतिहास और पुरातत्व की शोध के लिए आप बड़े प्रसिद्ध है। अजमेर अजायव घर के सुपरिन्टेन्डेंट रह चुके है। खोज के कार्य में ही आपका सारा जीवन व्यतीत हुआ है। आपके 'प्राचीन लिपिमाला' नामक ग्रन्थ पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया है। इस ग्रन्थरत्न से हिन्दी का मस्तक बड़ा ऊँचा हुआ है। राजस्थान के इतिहास के लिए ओझा जी प्रामाणिक विद्वान माने जाते थे। बडी शोध के उपरांत इनका श्रमसाध्य राजस्थान का इतिहास प्रकाशित हुआ है। विश्व के इने गिने इतिहास-वेत्ताओ और पुरातत्त्ववेत्ताओ में ओझाजी की गणना की जाती है। हिन्दी साहित्य के वे गौरव है।

भारतवर्ष जैसे उष्णप्रधान देश मे कागज या कपडे पर खिंचे हुए चित्र अधिक काल तक नही रह सकते, इसी से ई० स० १२०० तक के ऐसे चित्र यहाँ नही मिलते। कितनी एक पुस्तको मे विषय-सूचक सुन्दर चित्र अवश्य मिलते है, परन्तु वे सव हमारे निर्दिष्ट काल के पीछे के है। उक्त काल के रगीन चित्र केवल पहाडो को खोद खोद कर बनाई हुई सुन्दर विशाल गुफाओ की दीवारो पर ही पाये जाते है। वे ही हमारे उक्त काल और उससे पूर्व की चित्रकला के बचे खुचे चिन्ह मात्र है। ऐसी अब

तक चार गुफाओ का पता लगा है, जिनमे चित्रकला की दृष्टि से अजन्ता की गुफाएँ सबसे अधिक महत्व की है। ये गुफाएँ हैदराबाद राज्य के औरगाबाद जिले के अजन्ता गाँव से पश्चिमोत्तर मे चार मील दूर स्थित पर्वत श्रेणी मे खुदी हुई है। इनमे २४ बिहार (मठ) और ५ चैत्य (स्तूप वाले भवन) बने है। जिनमे से तेरह मे दीवारो, भीतरी छतो, या स्तभो पर चित्र अकित किये गये हे। चित्रलेखन से पूर्व चट्टानो की भित्ति पर एक प्रकार का प्लास्टर लगा कर चूने जैसे किसी पदार्थ से घुटाई की गई है। और उस पर चित्र अकित किए गए है। ये सब गुफाये एक समय की कटी हुई नही, किन्तु अनुमानत ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी से लगाकर सातवी शताब्दी के आसपास तक समय समय पर वनी है। इनके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न चित्रो के विषय मे भी यही समझना चाहिए। कई एक चित्र हमारे व्याख्यान के पूर्ववर्त्ती काल के होने से उस समय की भारतीय चित्रकला का परिचय देते हैं। अधिकतर चित्र हमारे निर्दिष्ट काल या उससे कुछ ही पूर्ववर्त्ती काल के है। इन चित्रो से उक्त काल की हमारी चित्रकला का परिचय मिलता है। उसमे गौतम वुद्ध की जीवन-घटनाएँ, मातृपोषक जातक, विश्वान्तर जातक, षडदान्त जातक, रुरु जातक और महा हम जातक आदि बारह जातको मे वर्णित गौतम बुद्ध की पूर्व जन्म की कथाये, धार्मिक इतिहास तथा युद्ध के दृश्य और राजकीय तथा लौकिक चित्र अकित है। ऐसे ही बगीचो, जगलो, रथो, राजदरबारो, घोडे, हाथी, हरिण आदि पशुओ, हस आदि पक्षियो तथा कमल आदि पुष्पो के अनेक चित्रण वने हुए हैं। इन सबको देखने से दर्शक के सामने एक ऐसे नाटक का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है, जिसमे जगलो , शहरो और राज महलो आदि स्थानो मे राजा, वीर पुरुष, तपस्वी, प्रत्येक स्थिति के स्त्री-पुरुष और स्वर्गीय दूत, गधर्व, अप्सरा और किन्नर आदि पात्र रूप से है। ऐसे सैकडो चित्रो मे से एक चित्र का परिचय इस अभिप्राय से दिया जाता है कि उनमे

से कुछ चित्रो का काल निर्णय करने मे सहायता मिल सके। तबरी नामक ऐतिहासिक अपनी पुस्तक मे लिखता है कि ईरान के बादशाह खुसरो (दूसरे) के सन जुलूस (राज्य वर्ष) छत्तीस (ई० स० ६२६) मे उसका एल्ची राजा पुलेकशी के पास पत्र और तुहफा लेकर गया और पुलकेशी का एल्ची पत्र और उपहार लेकर उसके पास पहुचा था। उस समय के दरबार का चित्र एक गुफा की दीवार पर अकित है जिसमे—

राजा गद्दी पर बिछे हुए सिहासन पर लब-गोला कृतिक तकिये के सहारे बैठा हुआ है, आसपास चॅवर और पखा करने वाली स्त्रियाँ तथा अन्य परिचारक स्त्री पुरुष, कोई खडे और कोई बैठे हुए है। राजा के सम्मुख बॉई ओर तीन पुरुष और एक लडका सुन्दर मोतियो के आभूपण पहिने हुए बैठे है (जो राजा के कुँवर, भाई या अमात्य वर्ग मे से होने चाहिए।) राजा अपना दाहिना हाथ उठा कर ईरानी एल्ची से कुछ कह रहा है। उस (राजा) के सिर पर मुकुट, गले मे बडे बडे मोती वा माणिक की इकलडी कठी और उसके नीचे सुन्दर जडाऊ कठा है। दोनो हाथो मे भुजबध व कडे है। यज्ञोपवीत के स्थान पर पचलडी मोतियो की माला है जिसमे प्रवर (ग्रन्थि) के स्थान पर पॉच बडे मोती है, और कमर मे रत्न जडित मेखला है। पोशाक मे आधी जॉघ तक कछनी और बाकी सारा शरीर नगा है। दक्षिणी लोग जैसे समेट कर दुपट्टा गले मे डालते है, उसी प्रकार समेटा हुआ केवल एक दुपट्टा कन्धे से हट कर पीछे के तकिए पर पडा हुआ है, और उसके दोनो समेटे हुए किनारे गद्दी के आगे पडे हुए दीखते है। उसका शरीर प्रचन्ड, पुष्ट और गौर वर्ण है (चेहरे के स्थान का चूना उखड जाने से वह नही दिख सकता)। दरबार मे जितने हिन्दोस्तानी पुरुष है उनके शरीर पर आधी जाँघ तक की कछनी के सिवा कोई वस्त्र नही दीखता और न किसी के दाढी या मूँछ है। कमर से लगा कर आधी जॉघ या कुछ नीचे तक का स्त्रियो के शरीर का हिस्सा वस्त्र से ढका हुआ है। किसी किसी के

स्तनो पर कपडे की पट्टी बँधी हुई है। बाकी सारा शरीर खुला हुआ है। यहाँ के प्राचीन चित्रादि मे स्त्रियो के स्तन बहुधा खुले हुए पाये जाते है, या कभी कभी उन पर पट्टियाँ बँधी हुई दीख पडती है। पट्टियाँ बाँधने का रिवाज प्राचीन है। श्रीमद्‌भागवत् मे भी उसका वर्णन मिलता है—

तदग सगप्रमुदाकुलेन्द्रिया. केशान् दुकूल कुचपट्टिकां वा।
नाज. प्रतिव्योढुमल व्रजस्त्रियो विस्र स्तमालाभरणा. कुरुद्वह ॥

राजा की तरफ एक टक दृष्टि लगा कर हाथ मे ली हुई मोतियो की लडें या कई लडवाली कठी नजर करता हुआ ईरानी एल्ची सम्मुख खडा है, जिससे राजा कुछ कह रहा है। उसके पीछे दूसरा ईरानी हाथ मे बोतल सी कोई चीज लिए खडा है, जिसके पीछे तीसरा ईरानी तुहफे की चीजो से भरी हुई किश्ती धरे हुए है। उसके पीछे पीठ फेर कर खडा हुआ चौथा ईरानी बाहर से हाथ मे कुछ चीज लेकर दरवाजे मे आते हुए एक दूसरे ईरानी की तरफ देखरहा है और उसके पास एक ईरानी सिपाही कमरमे तलवार लगाये खडा है और दरवाजेके बाहर ईरानियो के साथ अन्यपुरुष और घोडे खडे है। ईरानियो और हिन्दुस्तानियो की पोशाक मे रात दिन का-सा अन्तर है। जब हिन्दुस्तानियो का करीब-करीब सारा शरीर खुला है तो उनका प्राय सारा ढका हुआ है। उनके सिर पर ऊँची ईरानी टोपी, कमर का अँगरखा, चुस्त पायजामा और कई एक के पैरो मे मोजे भी है, और दाढी-मूछ सबके है। ईरानी एल्ची (जिससे राजा कुछ कह रहा है) के गले मे बडे-बडे मोतियो की एक लडी, पानदार कण्ठी, कानो मे लटकते हुए मोतियो के आभूषण और कमर मे मोतियो से जडी हुई कमरपेटी है। दूसरे किसी ईरानी के शरीर पर जेवर नही है। दरबार मे सब जगह फर्श पर पुष्प बिखरे हुए है। राजा के सिहासन के आगे पीकदानी पडी हुई है और चौकियो पर ढक्कन वाले पानदान आदि पात्र रखे हुए है।

इस चित्र से अनुमान होता है कि यह ई० सन् ६२६ के बाद बना होगा।

अजण्टा के चित्र चित्रकला मे प्रवीण आचार्यो के हाथसे खिचे हुए है। उनमे अनेक प्रकार का अग-विन्यास, मुख-मुद्रा, भाव-भगी और अग-प्रत्यगो की सुन्दरता, नाना प्रकार के केशपाश, वस्त्राभरण, चेहरो के रग-रूप आदि बहुत उत्तमता से वतलाये गए है। इसी तरह पशु, पक्षी, पत्र, पुष्प आदि के चित्र बहुत सुन्दर है। कई चित्र ऐसे भावपूर्ण है कि उनमे चित्रित स्त्री-पुरुषो की मानसिक दशा का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन होता है। भिन्न भिन्न प्रकार के रग और मिश्रण मे कमाल किया गया है। चित्रण इतना प्रशस्त और नियमित है कि प्रकृति और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से समझने वाले के सिवा दूसरा उन्हे अकित नही कर सकता। इन सब बातो को देखकर चित्रकला के आधुनिक वडे-वडे विद्वान भी मुग्ध हो कर मुक्त कण्ठ से इनकी उत्कृष्टता की प्रशसा करते है। मिस्टर ग्रिफिथ ने मृत्यु-शय्या पर पडी हुई एक रानी के चित्र की प्रशसा करते हुए लिखा है—करुणा रस, और अपना भाव, ठीक-ठीक प्रदर्शित करने मे चित्रकला के इतिहास मे इससे बढ कर कोई चित्र नही मिल सकता। फ्लोरेस के चित्रकार चाहे अधिक आलेखन कर सके और वेनिस वाले अच्छा रंग भर सके, परन्तु उनमे से एक भी इससे वढ कर भाव प्रदर्शित नही कर सकता है। चित्र का भाव इस प्रकार है—

झुके हुए सिर, अधखुली आँखे और शिथिल अग-प्रत्यग के साथ वह रानी मृत्यु-शय्या पर बैठी हुई है। उसकी एक दासी हलके हाथ से उसे सहारा दिए हुए खडी है, और एक दूसरी चितातुर दासी मानो नाडी देखती हो इस तरह उसका हाथ पकडे हुए है। उसकी मुख-मुद्रा से वह अत्यन्त व्यग्र प्रतीत होती है, मानो वह यह सोच रही है कि मेरी इस स्वामिनी का प्राण-पखेरू कितना शीघ्र उडनेवाला है। एक और दासी पखा लिये

हुए खडी है और दो पुरुष बाईं तरफ से उसकी ओर देख रहे है, जिनके चेहरो पर गहरी उदासीनता छा रहीं है। नीचे फर्श पर उसके सम्बन्धी वैठे हुए है, जो उसके जीवन की आशा छोड कर शोकाकुल हो रहे हे। एक अन्य स्त्री हाथ से अपना मुह ढककर बुरी तरह रो रही है।

इन चित्रो के असाधारण कलाकौशल से आकर्षित होकर कई चित्र-कला-मर्मज्ञो ने इनकी नकले की और इन पर कई पुस्तके भी प्रकाशित हो चुकी है।

अजन्टा की गुफाओ मे अकित जातक आदि को देखने से प्रतीत होता है कि उनके निर्माताओ ने अमरावती, साँची और भरहुत के स्तूपो की शिलाओ पर अकित जातको तथा गधार-शैली के तक्षण-कला (Sculpture) के नमूनो का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया हो, क्योकि उनमे तथा इनमे वहुत कुछ साम्य पाया जाता है।

इसी तरह ग्वालियर राज्य के अमझेरा जिले मे बाघ गाँव के पास पर्वतीय गुफाओं मे भी वहुत से रगीन चित्र है, जो ई० स० की छटी और सातवी शताब्दी के अनुमान किये जा सकते हैं। वे भी अजटा के चित्रो के समान सुन्दर, भावपूर्ण और चित्रकला के उत्तम नमूने है। इन चित्रो की भी नकले हो गई है और उनपर एक गन्थ प्रकाशित हो चुका है। लन्दन के 'टाइम्स' पत्र ने उक्त चित्रो की समालोचना करते हुए लिखा है कि यूरोप के चित्र उत्तमता मे इनकी समानता नही कर सकते। 'डेली टेली-ग्राफ' पत्र का कथन है कि कला की दृष्टि से ये चित्र इतने उत्कृष्ट है कि इनकी प्रशसा नही की जा सकती। इनका रग भी वहुत उत्तम है। जीवन और चेष्टा के भाव-प्रदर्शन की दृष्टि से ये चित्र केवल अपूर्व और चित्ता-कर्षक सस्कृति को ही नही वताते, किन्तु वे एक सत्य और विश्वव्यापी प्रभाव के दर्शक है।

कुछ समय पूर्व सित्तन नवासल मे, जो कृष्णा नदी के दक्षिणी किनारे पद्दूकोट से पश्चिमोत्तर मे नौ मील परे है, पहाड को काट कर बनाये हुए मन्दिर मे भी ऐसे कुछ चित्रो का पता लगा है। इन चित्रो को सबसे पहिले टी० ए० गोपीनाथ राव ने देखा। ये चित्र पल्लव शासक महेन्द्रवर्मा (प्रथम) के समय (सातवी शताब्दी के प्रारम्भ) मे बनाये गये हो ऐसा अनुमान किया जाता है। इस मदिर की भीतरी छतो स्तम्भो और उनके सिरो पर ये चित्र अकित है। यहाँ का मुख्य चित्र बरामदे की प्राय सारी छत को घेरे हुए है। इस चित्र मे कमलो से भरा हुआ एक सरोवर बतलाया गया है। पुष्पो के मध्य मे मछलियाँ, हस, भैसे, हाथी और हाथ मे कमल लिये हुए तीन साधु दीखते है। उन साधुओ का अग-विन्यास उनका रग और चेहरे की मधुरता वस्तुत बहुत आनन्दप्रद है। स्तम्भो पर नाचती हुई स्त्रियो के चित्र भी है। इस मदिर मे अर्ध-नारीश्वर जटा-मुकुट और मुकुट पहने हुए है। उनकी आँखो से दिव्य महत्ता की गहरी सूचना प्रगट होती है। इन चित्रो मे से कुछ का रग फीका पड गया है, तो भी चित्रो की उत्तमता का परिचय भली भाँति मिल जाता है। इन चित्रो मे से कुछ प्रकाशित भी हो चुके है।

मध्य प्रदेश की सरगुजा रियासत मे लक्ष्मणपुर गाँव से १२ मील पश्चिम मे रामगढ पहाडी पर खुदी हुई 'जोगीमारा' गुफा की छत मे भी कुछ रगीन चित्र बने हुए है जो हमारे निर्दिष्ट काल के प्रारम्भ के आसपास के माने जाते है।

इन चारो स्थानो मे जो भारतीय प्राचीन चित्र मिले है वे ही हमारे निर्दिष्ट काल तथा उससे कुछ पूर्व के हमारी चित्रकला के सर्वोत्कृष्ट बचे-खुचे नमूने है। आश्चर्य तो यह है कि ऐसे उष्णता वाले स्थानो मे बारह तेरह सौ वर्ष तक के चित्र बिगडते-बिगडते भी किसी प्रकार अच्छी स्थिति मे

रह गए और उन्ही से भारत की प्राचीन समुन्नत चित्रकला की उत्तमता का अनुमान होता है।

इस समय के पीछे अनुमान ६०० वर्षो तक भारतीय चित्रकला का इतिहास अन्धकार मे ही है, क्योकि उस समय के कोई चित्र नही मिले, परन्तु चीनी तुर्किस्तान के खोतान प्रदेश, दनदनयूलिक और मीरन स्थानो से दीवारो, काष्टफलको या रेशम आदि पर अकित जो चित्र मिले है वे चौथी से ग्यारहवी शताब्दी तक के आसपास के अनुमान किए जा सकते है। उनमे भारतीय चित्रकला का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। जैसे लंका मे भारतीय सभ्यता फैली हुई थी, वैसे मध्य एशिया मे तुर्किस्तान या उससे परे तक भारतीय सभ्यता का विस्तार था और भिन्न-भिन्न भारतीय शास्त्रो कलाओ आदि का वहाँ प्रचार हो गया था।

भारतीय चित्रकला यूरोपीय चित्रकला की तरह रूपप्रधान न होकर भाव-प्रधान है। हमारे चित्रकार बाहरी अग-प्रत्यगो की सूक्ष्मता तथा सुन्दरता पर उतना विशेष ध्यान नही देते, जितना यूरोप वाले। वे उसके आतरिक और मानसिक भावो को प्रदर्शित करने मे ही अपना प्रयत्न सफल समझते है। व्यक्त के भीतर जो अव्यक्त की छाया छिपी हुई है उसको प्रकाशित करना ही भारतीयो का मुख्यतम उद्देश्य रहा है। वस्तु के रूप से उन्हे उतनी परवाह नही जितनी मूलभाव को स्पष्ट करने से थी।

मिस्टर ई० बी० हैवेल का कथन है—यूरोपीय चित्र मानो पंख कटे हुए हो ऐसे प्रतीत होते है क्योकि वे लोग केवल पार्थिव सौन्दर्य का चित्रण जानते थे। भारतीय चित्रकला अतरिक्ष मे ऊँचे उठे हुए दृश्यो को नीचे पृथ्वी पर लाने के भाव और सौन्दर्य को प्रकट करती है।

बगाल की आधुनिक चित्र-शैली अजटा की प्राचीन शैली की तरफ झुकी हुई है।

साहित्य की महत्ता

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

श्री द्विवेदी जी का जन्म (रायबरेली) दौलतपुर में वैशाख शुक्ल ४ सं० १९२१ में हुआ था और निधन सं० १९९५ में हुआ। विद्यालय से तो साधारण शिक्षा ही इन्होने प्राप्त की थी पर अपने अध्ययन से इन्होने मराठी, बँगला, उर्दू, गुजराती, संस्कृत, अँगरेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। रेलवे विभाग में झाँसी, बम्बई इत्यादि में कुछ समय तक काम करने के उपरांत प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन करने लगे थे। सं० १९६० से १९७९ तक यह कार्य उन्होने किया। छोटी-बड़ी कई पुस्तको के अतिरिक्त इन्होने फुटकर विषयो पर बोधगम्य लेख भी लिखे हैं। सस्कृत काव्यो की सुन्दर आलोचनाएँ इन्होने की हैं। 'नैषध चरित चर्चा', 'कालिदास की निरकुशता' आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं। 'बेकन विचार-रत्नावली', 'किरातार्जुनीय', 'स्वतन्त्रता', 'महाभारत' आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इनके निबध विचारात्मक ही विशेष हैं। उनकी परिमार्जित प्रौढ़ शैली मे छोटे छोटे प्रसादगुणसम्पन्न वाक्य अधिक आते हैं। प्रभावोत्पादन के लिए एक ही बात कई तरह के वाक्यों में कुछ चमत्कार के साथ वे प्रगट करते हैं। वे इस मत के थे कि विषय चाहे जैसा भी हो सरल से सरल शब्दो मे प्रगट किया जा सकता है। गद्य में आई हुई शिथिलता का द्विवेदी जी ने परिहार किया और खड़ी बोली पद्य को भी व्याकरणसाह सम्मत रख कर बड़ा प्रोत्साहन दिया है। मिश्रित गद्य की आलोचनात्मक शैली के लिए वे प्रसिद्ध हैं।

ज्ञान-राशि के सचित कोश ही का नाम साहित्य है। सब तरह के भावो को प्रकट करने की योग्यता रखनेवाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नही रखती तो वह, रूपवती भिखारनी की तरह, कदापि आदरणीय नही हो सकती। उसकी शोभा, उसकी श्रीसपन्नता, उसकी मान-मर्यादा उसके साहित्य ही पर अवलबित रहती है। जाति-विशेष के उत्कर्षापकर्ष का, उसके उच्च-नीच भावोका, उसके धार्मिक विचारो और सामाजिक सगठन का, उसके ऐतिहासिक घटनाचक्रो और राजनैतिक स्थितियो का, प्रतिबिब देखने को यदि कही मिल सकता है तो उसके ग्रथ-साहित्य मे मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य है। जिस जाति-विशेष मे साहित्य का अभाव या उसकी न्यूनता आपको देख पडे, आप निस्सदेह निश्चित समझिए कि वह जाति असभ्य किवा अपूर्ण सभ्य है। जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। जातियो की क्षमता और सजीवता यदि कही प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है तो उनके साहित्य-रूपी आईने ही मे मिल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमे यह तत्काल मालूम हो जाता है कि अमुक जाति की जीवनी-शक्ति इस समय कितनी या कैसी है, और भूतकाल मे कितनी और कैसी थी। आप भोजन करना बद कर दीजिए या कम कर दीजिए, आपका शरीर क्षीण हो जायगा और अचिरात् नाशोन्मुख होने लगेगा। इसी तरह आप साहित्य के रसास्वादन से अपने मस्तिष्क को वचित कर दीजिए, वह निष्क्रिय हो कर धीरे-धीरे किसी काम का न रह जायगा। बात यह है कि शरीर के जिस अग का जो काम है वह उससे यदि न लिया जाय, तो उसकी वह काम करने की शक्ति नष्ट हुए बिना नही रहती। शरीर का खाद्य भोजनीय पदार्थ है और मस्तिष्क का खाद्य साहित्य। अतएव यदि हम

अपने मस्तिष्क को निष्क्रिय और कालातर मे निर्जीव सा नही कर डालना चाहते तो हमे साहित्य का सतत सेवन करना चाहिए और उसमे नवीनता तथा पौष्टिकता लाने के लिए उसका उत्पादन भी करते जाना चाहिए। पर, याद रखिए, विकृत भोजन से जैसे शरीर रुग्ण होकर विगड जाता है उसी तरह विकृत साहित्य से मस्तिष्क भी विकारग्रस्त हो कर रोगी हो जाता है। मस्तिष्क का वलवान् और शक्तिसपन्न होना अच्छे ही साहित्य पर अवलवित है। अतएव यह वात निर्भ्रान्ति है कि मस्तिष्क के यथेष्ट विकास का एकमात्र साधन अच्छा साहित्य है। यदि हमे जीवित रहना है और सभ्यता की दौड मे अन्य जातियो की वरावरी करना है तो हमे श्रम-पूर्वक, वडे उत्साह से, सत्साहित्य का उत्पादन और प्राचीन साहित्य की रक्षा करनी चाहिए। और यदि हम अपने मानसिक जीवन की हत्या कर के अपनी वर्त्तमान दयनीय दशा मे पडा रहना ही अच्छा समझते हो तो आज ही साहित्य-निर्माण के आडवर का विसर्जन कर डालना चाहिए।

आँख उठा कर जरा और देशो तथा और जातियो की ओर तो देखिए। आप देखेगे कि साहित्य ने वहाँ की सामाजिक और राजकीय स्थितियो मे कैसे कैसे परिवर्तन कर डाले है। साहित्य ने वहाँ समाज की दशा कुछ की कुछ कर दी है, शासन-प्रवन्ध मे वडे वडे उथल-पुथल कर डाले है, यहाँ तक कि अनुदार और धार्मिक भावो को भी जड से उखाड फेंका है। साहित्य मे जो शक्ति छिपी रहती है वह तोप, तलवार और वम के गोलो मे भी नही पाई जाती। योरप मे हानिकारिणी धार्मिक रूढियो का उत्पादन साहित्य ही ने किया है; जातीय स्वातत्र्य के वीज उसी ने वोए है, व्यक्तिगत स्वातत्र्य के भावो को भी उसी ने पाला-पोसा और वढाया है, पतित देशो का पुनरुत्थान भी उसी ने किया है। पोप की प्रभुता को किसने कम किया है? फ्रास मे प्रजा की सत्ता का उत्पादन और उन्नयन किसने किया है? पादा-क्रात इटली का मस्तक किसने ऊँचा उठाया है? साहित्य ने, साहित्य ने,

साहित्य ने। जिस साहित्य मे इतनी शक्ति है, जो साहित्य मुर्दो को भी जिदा करने वाली सजीवनी औषधि का आकर है, जो साहित्य पतितो को उठाने वाला और उत्थितो के मस्तक को उन्नत करने वाला है उसके उत्पादन और सवर्धन की चेष्टा जो जाति नही करती वह अज्ञानाधकार के गर्त में पडी रहकर किसी दिन अपना अस्तित्व ही खो बैठती है। अतएव समर्थ होकर भी जो मनुष्य इतने महत्त्वशाली साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि नही करता अथवा उससे अनुराग नही रखता वह समाजद्रोही है, वह देशद्रोही है, वह जातिद्रोही है, कि बहुना वह आत्मद्रोही और आत्महता भी है।

कभी-कभी कोई समृद्ध भाषा अपने ऐश्वर्य के बल पर दूसरी भाषाओ पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती है, जैसे जर्मनी, रूस और इटली आदि देशो की भाषाओ पर फ्रेंच भाषा ने बहुत समय तक कर लिया था। स्वयं अगरेजी भाषा भी फ्रेच और लैटिन भाषाओ के दबाव से नही बच सकी। कभी-कभी यह दशा राजनैतिक प्रभुत्व के कारण भी उपस्थित हो जाती है और विजित देशो की भाषाओ को विजेता जाति की भाषा दबा लेती है। तब उनके साहित्य का उत्पादन यदि बद नही हो जाता तो उसकी वृद्धि की गति मद जरूर पड जाती है। यह अस्वाभाविक दबाव सदा नही बना रहता। इस प्रकार की दबी या अध पतित भाषाएँ बोलने वाले जब होश में आते है तब वे इस अनैसर्गिक आच्छादन को दूर फेक देते है। जर्मनी, रूस, इटली और स्वय इगलैण्ड चिर काल तक फ्रेच और लैटिन भाषाओं के मायाजाल मे फँसे थे, पर बहुत समय हुआ, उस जाल को उन्होने तोड डाला। अब वे अपनी ही भाषा के साहित्य की अभिवृद्धि करते है; कभी भूल कर भी विदेशी भाषाओ मे ग्रथ-रचना करने का विचार नही करते। बात यह है कि अपनी भाषा का साहित्य ही जाति और स देश की उन्नति का साधक है। विदेशी भाषा का चूडात ज्ञान प्राप्त कर लेने और उसमें

महत्त्वपूर्ण ग्रथ-रचना करने पर भी विशेष सफलता नही प्राप्त हो सकती और अपने देश को विशेष लाभ नही पहुँच सकता। अपनी माँ को नि सहाय, निरुपाय और निर्धन दशा मे छोड कर जो मनुष्य दूसरे की माँ की सेवा-सुश्रूषा मे रत होता है उस अधम की कृतघ्नता का क्या प्रायश्चित्त होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवल्क्य या आपस्तब ही कर सकता है।

मेरा यह मतलब कदापि नही कि विदेशी भाषाएँ सीखनी ही न चाहिएँ। नही, आवश्यकता, अनुकूलता, अवसर और अवकाश होने पर हमे एक नही, अनेक भाषाएँ सीख कर ज्ञानार्जन करना चाहिए, द्वेष किसी भाषा से न करना चाहिए, ज्ञान कही भी मिलता हो उसे ग्रहण ही कर लेना चाहिए। परतु अपनी ही भाषा और उसी के साहित्य को प्रधानता देनी चाहिए, क्योकि अपना, अपने देश का, अपनी जाति का उपकार और कल्याण अपनी ही भाषा के साहित्य की उन्नति से हो सकता है। ज्ञान, विज्ञान, धर्म और राजनीति की भाषा सदैव लोक-भाषा ही होनी चाहिए। अतएव अपनी भाषा के साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि करना, सभी दृष्टियो से, हमारा परम धर्म है।

वीरवर बाप्पा रावल

श्री राधाकृष्णदास

राधाकृष्णदास जी का जन्म स० १९२२ मे काशी में हुआ था। और परलोकवास सं० १९६४ मे हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ये फुफेरे भाई थे। बाल्यकाल में प्रायः रोगग्रस्थ रहने के कारण इनकी शिक्षा क्रमबद्ध न हो पाई थी। परन्तु धीरे धीरे इन्होने घर पर ही हिन्दी, उर्दू, अँगरेजी, गुजराती और बँगला का अच्छा अभ्यास कर लिया था। भारतेन्दु के प्रभाव से इनकी प्रतिभा साहित्यसेवा मे उन्मुख हुई। 'दु:खनी बाला', 'निस्सहाय हिन्दू', 'राणा प्रताप नाटक' आदि इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। इनकी भाषा मे प्रौढ़ता और ओज है। 'राणाप्रताप नाटक' कई अवसरो पर सफलतापूर्वक अभिनीत हुआ है।

ईदर के राजा नागादित्य को मार कर जब भीलो ने फिर अपना राज्य स्वाधीन किया तब बाप्पा केवल तीन वर्ष का बालक था। उसके परिवार मे महा कोलाहल मच गया। चारो ओर शत्रु—रक्षा कैसे हो? क्या गहलौत वश आज नष्ट हो जायगा? बचने की कोई आशा न थी, चारो ओर लोहू के प्यासे भील ही भील दिखाई पडते थे, किन्तु ईश्वर निस्सहाय बालक का सहाय था, उसने उसकी रक्षा की। जिस कमलावती ने इनके मूल पुरुप गोह की रक्षा की थी उसी के वश के लोगो ने इसकी रक्षा पर भी कमर बाँधी। चाहे कुछ हो, वे बाप्पा की रक्षा अवश्य ही

करेगे। जीते जी बाप्पा की रक्षा जैसे हो करेहीगे, वे इनके कुल-पुरोहित थे। अपनी जान होम कर बाप्पा को ले सत्यपरायण ब्राह्मण लोग भाँडोर दुर्ग मे आए, वहाँ एक यदुवशी भील ने उन्हे आश्रय दिया, किंतु वहाँ भी सपूर्ण निरापद न जान कर वे पराशर वन मे चले गये। उस बन मे त्रिकूट नामक पर्वत है। उसके नीचे नगेन्द्र (जिसको नागोद कहते है) गॉव मे वे शिवोपासक शातिप्रिय ब्राह्मण बाप्पा को ले कर रहने लगे।

बाप्पा की लडकई की वडी विचित्र-विचित्र बाते सुनने मे आती है। बाप्पा उन ब्राह्मणो की गाय चराया करते थे। सूर्यवशीय महाराज शिलादित्य के वशज चरवाहो का कार्य करने लगे। बाप्पा की लडकई के सम्बन्ध मे भाटो ने वडी उत्तम-उत्तम रचनाएँ की है। शरदीय झूलनोत्सव मे राजपूताने मे बडी तैयारी और धूमधाम होती है। कहते है कि नागौद उस समय सोलकी वश के किसी राजा के हाथ मे था, इस झलनोत्सव मे उनकी लडकी अपनी सखियो और नगर की लडकियो के साथ खेलने के लिए कुज वन मे आई थी, पर झलुआ डालने के लिए रस्सी न मिलने से वह इधर-उधर ढूढने लगी। उसी समय बाप्पा वहाँ आ गए। लडकियो ने उनसे रस्सी माँगी, पर बाप्पा ने वाल-चापल्य से तमाशा करने के लिए हँस कर कहा—"तुम लोग जो हमसे विवाह करो तो हम अभी रस्सी ला दे।" भोली-भाली आनन्दमयी राजपूत वालिकाओ ने इस वात को मान लिया। उसी समय खेल मे विवाह हो गया। राजकुमारी और बाप्पा की गाँठ जोडी गई और सब लडकियो ने आपस मे हाथ पकड एक शृखलाबद्ध हो कर एक वडे पेड की फेरी दी। इसी घटना से बाप्पा के होनहार सौभाग्य का सूत्रपात हुआ। उन लड़कियो के वश वाले आज तक अपने को बाप्पा के वश मे कहत है।

थोडे दिन पीछे जब राजकुमारी विवाहने योग्य हुई तब राजा एक अच्छा वर ठहरा कर व्याह की तैयारी करने लगे। एक दिन लडके वाले की

ओर के एक सामुद्रिक ब्राह्मण ने राजकुमारी का हाथ देख कर कहा—"इनका विवाह तो हो चुका है।" इस आश्चर्य की बात से राज-भवन मे बडी हलचल मच गयी। यह विवाह किसने किया, कैसे हुआ, क्या हुआ, कब हुआ—यह जानने के लिए गुप्तचर छूटे। बाप्पा को भी यह खबर लगी। उसने सोचा कि तनिक सी बात खुलने पर हम बडी आपत्ति मे पडेगे। उसने अपने साथी चरवाहो को सावधान करा दिया, वे लोग उसकी जैसी भक्ति करते थे और उसे जैसा मानते थे उससे बात खुलने की कोई आशका ही न थी, तिस पर भी बाप्पा ने उन लोगो से बडी कडी सौगद ले ली कि वे रहस्य प्रगट न करे। सौगद ऐसे ली कि एक छोटासा कुआँ खोद कर हाथ में एक छोटा पत्थर का टुकडा लेकर बडे गम्भीर स्वर से वे बोले—"शपथ करो—सुख मे, दु ख मे, सपद मे, आपद मे हमारे साथ रहोगे, हमारी कोई बात मरने पर भी किसी से न कहोगे, हमारे विषय मे जो बात जहाँ सुनोगे उसी समय हमसे सब कहोगे। शपथ खाकरो कहो, जो ऐसा न करो तो इसी पत्थर के टुकडे की तरह तुम लोगो के बाप दादा सात पुरुषो का सब पुण्य अँधेरे कुएँ मे पडेगा।" और हाथ के पत्थर को उस कुएँ मे फेक दिया। साथियो ने एक मत होकर कसम खाई। उन लोगो ने इसके विरुद्ध कभी न किया; किन्तु जिस घटना-सूत्र मे कम से कम छ. सौ राजपूत बालाओ का भाग्य बँधा हुआ था वह कै दिन छिप सकता है? थोडे दिन मे आप ही राजा को सब बात विदित हो गई।

बाप्पा ने यह सब हाल सुना। वह विपदाशंका से पहाड के एक ऐसे प्रदेश में रहने लगे जहाँ कोई मनुष्य भी न था। इस निर्जन स्थान मे कई बेर इनके पूर्व पुरुषो को आश्रय मिला था। भागने के समय बालीय और देव ये दो भील-कुमार इनके साथ रहे। इन लोगो का जीवन बाप्पा के साथ जडित था। जब बाप्पा ने चित्तौर का राज्य लिया तब बालीय ने अपना अँगूठा फाड़ कर उसके ताजे लहू से उन्हे राज-तिलक दिया।

वालीय और देव यद्यपि असभ्य कुल मे उत्पन्न हुए थे, किन्तु उन लोगो का हृदय जिस पवित्र भाव से भरा हुआ था, उसने कितने सुसभ्य मनुष्यो के उज्ज्वल और ज्ञानालोकित हृदय मे स्थान पाया है ? वे लोग जैसा पवित्र चरित्र संसार मे छोड गए है वैसा चरित्र कितने सुसभ्यो का हुआ है ? उन लोगो ने जो प्रतिज्ञा की थी उसको पूरा-पूरा निवाहा। उस प्रतिज्ञा के लिये घर छोडा, कुटुम्ब छोडा, अपना सुख छोडा, सभी कुछ छोडा, कितनी वेर कितना कष्ट सहा, कितनी वेर उपवास किया, कितनी वेर रात-दिन जागते रहे और कितने ही असह्य क्लेश सहे, किन्तु उन्होंने एक क्षण भी वाप्पा का सग न छोडा, एक मुहूर्त्त भी वे अपनी प्रतिज्ञा न भूले। यदि वाप्पा को ऐसे जीवन-सहचर न मिलते तो उस अज्ञातवास से निकल कर चित्तौर के राजसिहासन पर उसका बैठना असम्भव था। वाप्पा भी अपने भील मित्रो का उपकार कभी न भूलते, अपने को उनके साथ से सुखी और सम्मानित समझते, और कई प्रकार से कृतज्ञता प्रकाशित करते। जिस दिन वीर चूडामणि वाप्पा ने अपने भिल्ल बन्धु बालीय और देव के हाथ से आनन्द हृदय से चित्तौर-राज-तिलक ग्रहण किया, उसी दिन से, उसी पवित्र आनन्दमय दिन से, आज तक चित्तौर की राजगद्दी पर जो राणा बैठते है उनको इन्ही के वशधर तिलक करते है और ये लोग उनके हाथ से तिलक पाकर अपने को सम्मानित और गौरवान्वित मानते है।

भाट लोग वाप्पा के भागने का वृत्तान्त यो लिखते है—वाप्पा नागीद में अपने प्रतिपालक ब्राह्मण की गाय चराने लगे। सूर्यवशीय महाराज शिलादित्य के वश मे हो कर भी वे आनन्दपूर्वक गाय चरा कर दिन बिताने लगे। इन गौओ मे एक दुधार गऊ थी, जब वह सझा को चराई से आती तो उसके थन से एक बूद दूध भी न निकलता। ब्राह्मणो के जी मे सदेह हुआ कि वाप्पा इसका दूध पी जाते है। वे लोग अत्यन्त सतर्कता से वाप्पा पर ध्यान रखने लगे। वाप्पा ने यह जान लिया। वे उन लोगो के इस

सन्देह से बड़े ही दु.खी हुए। किन्तु क्या करे? जब तक इसका ठीक कारण जान कर न प्रकाशित कर सके उतने दिन मन का दु.ख मन ही मे रखना पड़ा। उन्होने इस गाय पर विशेष ध्यान रखने का दृढ सकल्प किया। दूसरे दिन चराई पर जा कर बाप्पा उस गाय के पीछे-पीछे घूमने लगे। गाय एक एकान्त पहाड की गुफा मे घुसी। बाप्पा भी पीछे-पीछे चले गये। अकस्मात् एक अद्भुत दृश्य दिखलाई पडा। देखा कि गाय एक सघन लता-मण्डल के ऊपर अविरल पयोधर अभिसिचन कर रही है। बाप्पा बडे ही विस्मित हुए, पास जा कर देखा कि लता-मण्डल मे एक शिवलिग स्थापित है और उसी शिवलिग के ऊपर सुधामय दुग्धधारा गिर रही है। अब बाप्पा ने जाना कि इसी से गाय का दूध क्षय हो जाता है। शिवलिग के सामने एक बेत के कुज मे ध्यान मे मग्न एक योगी बैठे है। उस स्थल मे बाप्पा के जाने से योगी का ध्यान-भग हो गया; किन्तु दयासागर तपस्वी ने बाप्पा को कुछ भी न कहा। योगी का नाम हारीत था, वे भी इस गाय का दूध पीते थे।

बाप्पा ने हारीत को साष्टाग प्रणाम किया। उन्होने आशीर्वाद देकर परिचय पूछा। राजपूत-कुल-तिलक बाप्पा ने, जहाँ तक जानते थे, अकपट भाव से अपना हाल कह सुनाया। उस दिन मुनिवर हारीत से बिदा हो कर बाप्पा गाय ले कर घर आए। उस दिन से बाप्पा नित्य योगी के पास आते, उनका पैर धोते, चरणामृत लेते, दूध दुह कर पिलाते और पूजा के फूल चुन लाते। बाप्पा की ऐसी अकपट भक्ति देख महात्मा हारीत चित्त से प्रसन्न हुए और उन्हे बहुत सी नीति-शिक्षा देने लगे। कुछ काल ऐसे ही बीता। मुनिवर धीरे धीरे ऐसे सन्तुष्ट हुए कि उन्होने शैव-मत्र मे दीक्षित कर के अपने हाथ से बाप्पा के गले मे जनेऊ पहिना दिया और उन्हे "एकलिग के दीवान" की बडी भारी उपाधि दी। बाप्पा की अकपट भक्ति और स्नेह-पूर्वक शिव-पूजा देख कर भगवती भवानी भी अत्यन्त प्रसन्न हुई।

उन्हे आशीर्वाद देने के लिए वे स्वय सिंह पर चढ के सामने आई। उन्होने अपने हाथ से विश्वकर्मा के बनाये हुए शूल, धनुष, तीर, तुनीर, असिचर्म और वडी तलवार इत्यादि उत्तमोत्तम शस्त्रो से वाप्पा को अलकृत किया। ऐसे आदि-देव भगवान् भूतनाथ के मत्र से दीक्षित और भगवती भवानी के दिये हुए दिव्यास्त्रो से सुसज्जित होकर वाप्पा अत्यन्त पराक्रमशाली हो गए। तब उनके गुरु महर्षि हारीत ने शिवलोक मे जाने का दृढ सकल्प किया। उन्होने वाप्पा से सब समाचार कहा और स्वर्गारोहण के दिन वड़े तड़के बुलाया, पर वाप्पा गाढी नीद मे सो जाने से ठीक समय पर वहाँ न पहुँच सके। वहाँ पहुँच कर वाप्पा ने देखा कि योगीश्वर हारीत अप्सरावाहित दीप्तिमय रथ पर चढ कर आकाश मे कुछ दूर तक जा चुक है। महर्षि ने अपने प्रिय शिष्य पर अन्तिम प्रेम दिखलाने के लिए रथ को रोका और आशीर्वाद लेने के लिए वाप्पा को अपने पास आने को कहा। देखते-देखते अकस्मात् वाप्पा का शरीर वीस हाथ बढ गया, तिस पर भी वे गुरु के पास न पहुँच सके। तव मुनिवर ने मुंह खोलने को कहा। वाप्पा ने मुँह खोला। हारीत ने मुँह मे निष्ठीवन डाला। किन्तु वाप्पा भाग्यदोष से एक अमूल्य वर लाभ न कर सके। घृणा और अवज्ञा प्रकाश कर के मुँह करने से पवित्र निष्ठीवन पैर पर गिर पडा। यदि वाप्पा घृणा से गुरु के दिये हुए स्नेहोपहार की अवमानना न करते तो अमर हो जाते, किन्तु यह न हुआ। अमर तो न हो सके, पर देह सब अस्त्र-शस्त्र से अभेद्य हो गई। यह भी उनके लिये कुछ थोडे सौभाग्य का विषय नही था। इधर देखते देखते हारीत थोडी देर में आकाश मडल मे अन्तर्हित हो गये।

जिस दिन यह घटना हुई उसी दिन से वाप्पा ने मूल-मत्र साधने की प्रतिज्ञा की। उसी दिन से उनका भाग्य चमका। वाप्पा ने अपनी माँ से सुना था कि चित्तौरगढ का मौर्य राजा इनका मामा है। इस सम्वन्ध के कारण वाप्पा अपने कार्यसाधन में दूने उत्साहित हुए। चरवाही करके जीने से

उन्हें घृणा उत्पन्न हुई। थोडे से साथी लेकर वे लोकालय मे आये। बाप्पा ने आज पहले ही पहिल लोकालय देखा। मनुष्यो का वासस्थान कैसा है यह वे आज तक नही जानते थे। लोकालय का सौन्दर्य देखकर वे और भी उत्साहित और उत्तेजित हुए। जब दिन अच्छे फिरते हैं तो मिट्टी छूने से भी सोना हो जाती है। आज बाप्पाका भाग्य चमका है, जिधर जाते है उधर ही मगल देख पडता है। वन से निकलते ही नाहरा मगरा पर्वत के नीचे सुप्रसिद्ध बाबा गोरखनाथ से उनकी भेट हुई। गोरखनाथ ने उन्हे एक दोरुखी तलवार दी। मन्त्र फूक कर इस तलवार से मारने से अनायास पहाड कटता है। बाप्पा की उन्नति का पथ पहले ही से परिष्कृत था, जो कुछ बाकी था सो आज पूरा हो गया, इस तलवार की पूजा हर बरस राणा लोग करते हैं।

प्रमर की एक शाखा मौर्य वश है। इस समय ये लोग ही भारतवर्ष मे सबसे बडे राजा थे। बाप्पा जिस समय चित्तौर मे गये उस समय मानसिह नामक मौर्यवशीय राजा सिहासन पर थे। महाराज मानसिह ने अभ्यागत भाजे को यथोचित आदर से रखा और अपनी सामत-मडली मे मिलाकर खाने पहिरने के लिए उसे एक अच्छी जागीर दी। उस समय सामन्त प्रथा राजपूताने मे बहुत प्रचलित थी। राजपूत सामत लोग बडी-बडी जागीरे भोगते थे और लडाई के समय मानसिह की सहायता के लिये। अपनी-अपनी सेना लेकर आ जाते थे। पहले ये लोग विशेष भक्तिमान थे और वे भी इन्हे स्नेह करते थे; पर जिस दिन से बाप्पा उनके प्रेमपात्र हुए उस दिन से मानसिह सामन्तो का ध्यान कम रखने लगे। उन लोगो ने समझा कि इनके मूल कारण बाप्पा ही है, इससे वे लोग इनके बडे भारी शत्रु हो गए और उन्होने सब तरह से इनका अनिष्ट करने की प्रतिज्ञा की।

उसी समय एक विदेशी शत्रु ने चित्तौर पर चढाई की। महाराज मानसिह ने अपने सामन्तो को लडने की आज्ञा दी; पर उन लोगो ने अपनी

३८०१

जागीरो के पट्टे बडे घमड से पटक कर कहा—"महाराज ! अपने प्यारे बाप्पा को लडाई मे भेजिए ।" बाप्पा ने यह सब अपने कान से सुना पर इससे वे तनिक भी साहसहीन न हुए वरच उन्होने दूने उत्साह के साथ उस देशबैरी पर अकेले चढाई की । सामन्तो ने मारे घमड के जागीर तो छोड दी, पर लोकलाज के डर से लडाई मे बाप्पा का साथ दिया । वीर-केसरी बाप्पा की तलवार की चोट शत्रु लोग न सह सके, हार कर इधर-उधर भाग गये । बाप्पा उसी विजयी वेश से अपने बाप दादा की राजधानी गजनी नगर मे चले गये । गजनी उस समय सलीम नामक एक म्लेच्छ राजा के अधिकार मे थी । बाप्पा उससे राज्य छीनकर सौर वशीय एक सामन्त को राज्य-सिंहासन पर बिठला कर चित्तौर फिर आये । कहते है कि इसी समय इन्होने म्लेच्छ सलीम की लडकी से विवाह किया था ।

जले कुढे सामन्त लोग मानसिह से अत्यन्त रुष्ट हो चित्तौर छोडकर और कही चले गये । राजा इससे बडे ही दुखी हुए । उन्होने लौट आने के लिये उनके पास कई वेर दूत भेजा, पर वे लोग किसी तरह न फिरे । क्रोधान्ध सामन्त लोग किसी तरह प्रकृतिस्थ न हुए और उन्होने विद्वेष भाव न छोडा, यहाँ तक कि गुरु का कहना भी न माना । जो दूत मनाने के लिये गया था उससे उन लोगो ने कहा कि "हम लोगो ने उनका निमक खाया है इससे एक बरस कुछ बदला न लेगे ।" वे अपनी नीच दुराकाक्षा सिद्ध करने के लिये एक उपयुक्त अधिनायक खोजने लगे । जिस बाप्पा के कारण उन लोगो की यह दशा हुई, अन्त मे उसी को उसके अलौकिक शौर्य और गुण-गौरव से लाचार होकर उन लोगो को अपना सरदार करना पडा । आहा ! राज्य का लोभ कैसा भयानक होता है ! धन के लोभ मे पडकर मनुष्य को भले बुरे का ध्यान नही रहता । परम उपकारी बन्धु का ध्यान नही रहता । बाप-बेटे का ध्यान नही रहता । धर्म का ध्यान नही रहता । केवल एक धन का ध्यान रहता है !! बाप्पा की भी वही

दशा हुई। जो मानसिंह इनके मामा थे, जिनके अनुग्रह से इनकी उन्नति का द्वार खुल गया, जो इन्ही के कारण अपने सामन्तों के विद्वेषानल मे पडे, अन्त मे बाप्पा उनके सब उपकारो को भूलकर पत्थर सा कलेजा करके वीरधर्म को तिलाजलि देकर उन्हे मार उन्ही सामन्तो की सहायता से सिहासन पर आप बैठ गये ! ! सिंहासन पर बैठने पर सब लोगो ने एकमत होकर इन्हे "हिन्दू सूर्य", "राजगुरु" और "चक्कवै" (अर्थात् सार्व भौम) की उपाधि दी।

वीरवर बाप्पा मातृभूमि, लड़के वाले और घर कुटुम्ब सब छोड़ कर खुरासान चले गये और उसे जीत कर उन्होने बहुत सी म्लेच्छ स्त्रियो से विवाह किया। इन लोगो के गर्भ से लडके लडकियाँ हुई।

पूरे एक सौ वर्ष की अवस्था मे वीर-कुल-तिलक बाप्पा ने मनुष्य देह छोडी। देलवारा के राजा के पास एक पुराना इतिहास है। उसमे लिख है कि बाप्पा ने इस्पहान, कधार, काश्मीर, इराक, तूरान और काफिस्ता इत्यादि देशो के राजाओ को जीतकर उनकी लडकियाँ ब्याही थी औ अन्त मे तपस्वी होकर सुमेरु के नीचे अपना शेष जीवन बिताया था कहते है कि वहाँ उन्होने जीते जी समाधि ली थी। इन म्लेच्छ स्त्रियो से बाप्पा को एक सौ तीस लडके हुये। वे सब नौशेरा पठान नाम से प्रसि है। इन लोगो ने अपनी-अपनी माँ के नाम पर एक-एक स्वतन्त्र वश चलाय था। बाप्पा की हिन्दू स्त्रियो के गर्भ से सब मिला के अट्ठानवे लडके हु थे। ये सब 'अग्नि-उपासी सूर्यवशी' नाम से प्रसिद्ध है।

भट्ट ग्रन्थ मे एक और भी विचित्र बात लिखी है। कहते है कि बाप्प के मरने पर उनके हिन्दू और म्लेच्छ सन्तानो मे बडा झगडा उठा। हि लोग उन्हे जलाने को कहते थे और मुसलमान लोग कब्र मे गाड़ना चाह थे। इसका पचडा बडी देर तक पडा रहा, कुछ तै ही न हो, अन्त में बाप्प के शरीर पर का कपडा उठा कर देखा गया तो शरीर के बदले श्वेत कम

के फूल मिले ! ये फूल वहाँ से निकाल कर मानसरोवर मे लगाये गये। पारसी वीर नौशेरवाँ का भी यही हाल सुना जाता है।

वाप्पा संवत् ७६९ मे जन्मे। जब ये चित्तौर के सिहासन पर बैठे तब पन्द्रह वर्ष के थे। सवत् ७८४ या ७२८ ई० मे गद्दी पर बैठे। वाप्पा का नाम वाप्प और शिलाधीश भी कही-कही पाया जाता है।

महात्मा कबीरदास

मिश्रबन्धु

पं० गणेशबिहारी मिश्र, डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र एव पं० शुकदेव बिहारी मिश्र सम्मिलित रीति से मिश्रबंधु के रूप में साहित्य-संसारमें प्रसिद्ध है। हिन्दी भाषा और साहित्य का मिश्रबंधुओ ने बडा उपकार किया है। ये सहोदर भाई है और विविध रचनाएँ मिश्रबधु के नाम से ही करते रहे है। छत्रपुर के दीवान एवं कलक्टर आदि कई उच्च पद पर ये भाई कार्य करते रहे है। ये इटौजा के निवासी है।

इनके 'मिश्रबंधु विनोद' से ही हिन्दी के शृंखलाबद्ध इतिहास निर्माण का कार्य प्रारम्भ होता है और इनके हिन्दी नवरत्न से ही गम्भीर तात्विक आलोचना की ओर साहित्यिकों का ध्यान गया है। ये बड़े ही विद्याव्यसनी, साहित्यानुरागी बधु है। ऐतिहासिक शोध, और आलोचना के अतिरिक्त ओवितांक एवं नाटको की भी इन्होने रचना की है। 'मिश्रबंधु विनोद' 'हिन्दी नवरत्न', 'भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास', 'लवकुश चरित', "वीरमणि', 'नेत्रोन्मीलन नाटक', 'पूर्व भारत नाटक', 'लालचीन' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ है।

मिश्रबधुओं को आलोचना के मार्ग में स्फूर्तिदान देने का श्रेय अवश्य प्राप्त है। किंतु इनकी समीक्षा-पद्धति कुछ निर्णयप्रधान होने से संशय को भी स्थान देती रही है। फलतः आलोचना क्षेत्र मे तुलनात्मक विचार-विमर्श के लिए पथ विस्तीर्ण हुआ।

महात्मा कवीरदास का जन्मकाल एव मृत्युकाल विविध ग्रथो मे अनेक प्रकार से लिखा हुआ है। "कवीर-कसौटी" मे ये काल सवत् १४५५ तथा १५७५ माने गए है और "भक्ति-सुधा-विदु-स्वाद" मे सवत् १४५१ तथा १५५२। हम इनका जन्मकाल "कवीर-कसौटी" ही का मानते है और मृत्यु-काल "भक्ति-सुधा-विदु-स्वाद" का। इस हिसाव से कवीर साहव की अवस्था करीव ९७ वर्ष की निकलती है।

आपकी माता और पिता के नाम नीमा और नीरू थे। वे जाति के जुलाहे थे। किसी-किसी का यह भी कथन है कि नीमा और नीरू कवीर साहव के पालक मात्र थे, और इनका जन्म एक हिन्दू (ब्राह्मणी) विधवा के उदर से हुआ था, जिसने लोक लाज के भय से इन्हे लहरतारा तालाव के पास डाल दिया था। नीमा और नीरू ने इन्हे वहाँ से उठा कर पाला। हमको समझ पडता है, यह कथा मनगढत है। कवीर साहव वास्तव मे नीमा और नीरू के ही थे। इन्होने अपने को काशी का जुलाहा वार-वार कहा, किन्तु ब्राह्मणी का मातृत्व कही नही वर्णन किया।

आप लडकपन से ही धार्मिक थे और उपदेश सुनने का चाव रखते थे। आप तिलक इत्यादि लगा कर राम नाम जपा करते थे। कहते है, लोगो ने इनसे कहा कि जव तक तुम निगुरे रहोगे, तव तक तिलक-जाप आदि से पूरा फल न होगा। इसी विचार से आपने प्रसिद्ध महर्षि स्वामी रामानन्द को अपना गुरु वनाया। एक जुलाहे को शिष्य वनाने से स्वामी जी की महानुभावता प्रकट होती है।

कवीर साहव के धार्मिक सिद्धान्तो मे वहुत सी वाते ऐसी भी निकलती है, जिनसे प्रकट होता है कि आपको सूफी-मत का अच्छा ज्ञान था। इसलिए अथवा अन्य कारणो से मौलवी गुलाम सरवर ने खजीनतुल असफिया मे आपको झाँसी वाले, शैख तकी का शिष्य कहा है। यह महाशय सूफी-मत के पूर्ण ज्ञाता थे। सरवर महाशय का कथन है कि कवीर साहव को हिन्दू

लोग "भगत कबीर" और मुसलमान "पीर कबीर" कहते थे। कबीर महाशय ने अपनी कविता मे शैख तकी का नाम अवश्य लिया है; किन्तु उन्हे अपना गुरु नही कहा। इधर कबीर साहब ने स्वामी रामानन्द को कई बार साफ-साफ गुरु कहा है। इससे शैख तकी का गुरुपन अग्राह्य है। स्वामी रामानन्द का पाडिण्त्य अगाध था, और उनका सूफियो से प्राय वाद हुआ करता था। इसलिए उनके शिष्य कबीर का सूफी सिद्धान्त जानना कोई आश्चर्य की बात नही है। स्वामी रामानन्द महात्मा रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा मे थे। महात्मा जी वैष्णव थे। उन्होने द्विज मात्र को अपने शिष्यत्व मे लिया, किन्तु शूद्रो को रामानुजीय सम्प्रदाय मे सम्मिलित होने का अधिकार नही दिया। स्वामी रामानन्द ने यह त्रुटि दूर कर के शूद्रो को भी शिष्य बनाया और इस प्रकार रामानुजीय सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामानन्दी-शाखा-सम्प्रदाय चलाया। आपने रैदास नामक प्रसिद्ध चमार भक्त को भी अपना शिष्य बना लिया। इतना करने पर भी स्वामी रामानन्द एक जुलाहे मुसलमान को शिष्य बनाने पर तैयार न थे, और इधर कबीर दास को उन्ही का शिष्य होने की लौ लगी थी इसलिए आपने स्वामी जी का शिष्य बनने की एक अनोखी युक्ति निकाली। स्वामी रामानन्द सूर्योदय के पूर्व मणिकर्णिका-घाट पर नित्य स्नान करने जाया करते थे। एक दिन कबीरदास उनके मार्ग की सीढ़ी पर लेट गए और उनका पैर इनके सिर पर पड गया। बेचारे स्वामी जी "राम-राम" कह कर अलग हो गए किन्तु कबीर ने तुरन्त उठ कर कहा—"आपने मेरे सिर पर पैर रख कर मुझे राम-नाम का मंत्र दिया है, अत. मैं आपका शिष्य हो गया"। स्वामीजी ने कबीर की शिष्यत्व पर ऐसी भक्ति देखकर उन्हे हृदय से लगाया, और अपना शिष्य भी मान लिया। इस प्रकार कबीर साहब महात्मा रामानन्द के शिष्य हुए।

कबीर साहब अशिक्षित थे। आपने जितनी कविता बनाई है वह मौखिक थी। 'बीजक' मे आप लिखते है—

"मसि कागज छूवो नही कलम गहो नहिं हाथ।
चारिउ जुग का महातम कबिरा मुखहि जनाई बात।।"

हजारो पद बनाने और अविचल भक्त होने पर भी आपने कपडा बुनने का अपना पैतृक व्यवसाय कभी नही छोडा। रचना मे भी आपने बार बार जुलाहेपन की बातो का उल्लेख किया है। आपका विवाह बनखडी बैरागी की पालिता कन्या लोई के साथ हुआ था, जिससे आपके कमाल और कमाली नामक पुत्र और कन्या उत्पन्न हुई। लोई बडी सुन्दरी थी और उसने कबीर के सद्‌गुणो पर रीझ कर इनका साथ पसद किया था। कबीर साहब सत-सग को बहुत पसन्द करते थे। एक बार इनके यहाँ कुछ सत ऐसे समय मे आए, जब आतिथ्य करने को इनके पास कुछ भी न था। इस पर यह बडे सकट मे पडे। तब लोई ने कहा—यदि आपकी इच्छा हो तो साहूकार के उस बेटे से धन लाऊँ जो मुझ पर मोहित है। कबीर ने सत-समादर के विचार से यह भी स्वीकार कर लिया। और लोई ने रात को उसके पास जाने का वचन देकर धन प्राप्त किया, जिससे सतो का आतिथ्य हुआ। रात को जाने के समय बडे जोर से पानी बरसने लगा। तब भी कबीर साहब वचन रखने के लिए अपने कधे पर चढा कर लोई को साहूकार के पुत्र के यहाँ ले गए। जब उसने यह जाना, तब कबीर साहब के पैरो पर गिर कर क्षमा माँगी। और इनका शिष्यत्व ग्रहण किया। ऐसी माता और पिता पाकर भी "कमाल" उच्चतम आचरण न प्राप्त कर सका। उसके विषय मे स्वय कबीरदास लिखते है—

"बूडा बस कबीर का उपजे पूत कमाल,
हरि का सुमरिन छोडि के घर ले आया माल।।"

कबीर साहब जो कपडा बना कर बाजार मे बेचने ले जाते थे उसे कभी-कभी बेचने के स्थान पर साधुओ को दे देते और खाली हाथ घर लौट आते थे। ऐसे पुरुष को पुत्र के धन पर आसक्ति बुरी लगनी ही चाहिए।

कबीर साहब ने देश-देश घूम कर लौकिक ज्ञान का उपार्जन किया था। आप बलख तक गए थे। आप सत्य के इतने पक्षपाती थे कि जो बात आपको असत्य जँचती थी उसकी तीव्र शब्दो मे आलोचना अवश्य करते थे, चाहे इनके मत से उससे थोडा ही सा अन्तर क्यो न हो। आप स्वयं सत और योगी थे, किन्तु गृह त्याग को पसद न करने के कारण ऐसे लोगो की आप सदा निन्दा किया करते थे।

इसी भाँति हिन्दू और मुसलमानो के सैकडो धार्मिक आचार-विचारो पर आपने शुद्ध भाव से तीव्र कटाक्ष किए है। "झूठा रोजा झूठी ईद" जैसे वाक्य आपके मुख पर सदैव रहते थे। इन कारणो से बादशाह सिकन्दर लोदी तक आपकी शिकायत पहुँची, और उसने उन्हे जजीरो से बँधवा कर गगा जी मे फिकवा दिया, किन्तु यह किसी प्रकार बच गए। आपने स्वय लिखा है—

"गग लहर मेरी टूटी जँजीर, मृग छाला पर बैठे कबीर।
कह कबीर कोउ सग न साथ, जल थल राखत है रघुनाथ॥"

इनके महात्म्य-विषयक बहुत से अन्य उपाख्यान भी प्रचलित हैं जिनमे अप्राकृतिक घटनाओ का कथन है। उनका यहाँ समावेश नही किया जाता। धार्मिक विरोध से ही समझ पडता है कि अन्त मे आपको अपने जन्म-स्थान तथा आजन्म के निवास-स्थान काशी को छोडना पडा। यद्यपि आपके काशी छोडने का एक कारण यह भी था कि आप वहाँ मरने के कारण स्वर्ग प्राप्त करना निंद्य समझते थे। कहते है, काशी मे मरनेसे मनुष्य स्वर्ग को अवश्य जाता है और मगहर मे शरीर छोड़ने से नरक

को। इसी से कबीर साहब यह कह कर काशी से मगहर चले गए कि "जो कबीर काशी मरै, तो रामै कौन निहोर।" भक्ति-सुधा-स्वाद का कथन है कि आपने सवत् १५४९ मे मगहर पधार कर तीन वर्ष के अनन्तर शरीर छोडा। कबीर कसौटी मे इस घटना का वर्णन निम्न लिखित है —

"पन्द्रह सौ पचहत्तर किय मगहर को गौन,
माघ-सुदी एकादशी, रहो पौन मे पौन।।"

इनका शरीरान्त होने पर इनके हिन्दू तथा मुसलमान शिष्यो मे इनके अन्तिम सस्कार के विषय मे झगडा होने लगा। किन्तु जब शव पर से चद्दर उठाई गई, तब शव के स्थान पर फूलो का ढेर मिला। इस पर फूलो के दो भाग कर के एक भाग से हिन्दुओ ने काशी मे कबीर-चौरा बनाया, और दूसरा भाग मुसलमानो ने गाड कर मगहर मे कब्र बनाई, जो अब तक मौजूद है। ये दोनो स्थान अब भी आपके पथ वालो के द्वारा पूजे जाते है। शव के स्थान पर फूलो वाली कथा महात्मा नानक तथा चित्तौर के बाप्पा रावल के विषय मे भी प्रचलित है। महात्मा कबीरदास सिद्ध योगी थे। इनके धार्मिक विचार बहुत ऊँचे थे।

कबीर साहब के बहुत से शिष्य उनके जीवन काल ही मे हो गए थे। उनके पीछे कबीर-पथ अब तक चल रहा है। भारत मे अब भी आठ-नव लाख मनुष्य कबीर-पथी है। इनमे मुसलमान बहुत थोडे है और हिन्दू बहुत अधिक। कबीर साहब का मान रीवाँ ने बहुत किया था। रीवाँ नरेश महाराजा विश्वनाथसिह ने 'बीजक' की टीका भी रची। कबीरदास के बाद उनके मत की बारह शाखाये हो गई। कबीरपथियो मे त्यागी और गृहस्थी दोनो है। इनका कोई दूसरा धर्म नही है। वरन् हिदू कबीर पथी हिदू है और मुसलमान कबीर पथी मुसलमानहै। कबीर-पथ उनका विश्वास

मात्र है। हिंदू कबीर-पथी अधिकतर नीच जातियो के है, और इस पथ के गुरु भी ऐसे ही है।

कबीरदास ने स्वय ग्रथ नही लिखे, वरन् केवल मुख से भाखे। इनके शिष्यो ने उन्हे लिपि-बद्ध किया। ऐसी दशा मे उनमे बहुत कुछ अदल-बदल हो जाना सम्भव है। "वेस्कट" महाशय का विचार है कि इस बात पर विश्वास करने के लिए दलीले है कि कबीर की अधिकतर शिक्षाये धीरे-धीरे हिन्दू धर्म के साँचे मे ढल गई है। हमको समझ पडता है कि कुछ घटाने-बढाने से इन महात्मा के उपदेशो मे अंतर डालना कठिन था। आपने एक ही विचार को सैकडो प्रकार से कहा है, और सब मे एक ही भाव प्रतिध्वनित होता है। आप राम-नाम की महिमा गाते थे, एक ही ईश्वर को मानते थे, कर्मकाड के घोर विरोधी और सखी भाव के अविचल भक्त थे। अवतार, मूर्त्ति, रोजा, ईद, मसजिद, मन्दिर आदि को यह नही मानते थे। अहिसा, मनुष्य मात्र की समता तथा ससार की असारता को उन्होने बार-बार गाया है। यह उपनिषदो के विचार वाले ईश्वर को मानते थे, और साफ कहते थे कि वही शुद्ध ईश्वर है, चाहे उसे राम कहो चाहे अल्ला।

नमूने के लिए उनके कुछ पद नीचे दिये जाते है।

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान,
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

केसन कहा बिगारिया जो मूडौ सौ बार,
मन को क्यो नही मूडिए, जामे विषय विकार।

कबिरा सगत साध की ज्यो गधी की बास,
जो कुछ गधी दे नही, तो भी बास सुबास।

माटी कहे कुम्हार को, तू क्या रौदे मोहि,
इक दिन ऐसा होयगा, मै रौदूगी तोहि।

इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहि,
घर की नारी को कहे तनकी नारी जाहि।

जो तोको काटा बुवै ताहि बोव तू फूल,
तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरमूल।

आब गई आदर गया नैनन गया सनेह,
ये तीनो तब ही गए, जबहि कहा कछु देह।

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं,
सीस उतारै भुईं धरै, ता पैठे घर माहि।

जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द,
कब मरिहौ कब पाइहौ, पूरण परमानन्द।

पतिबरता पति को भजै और न आन सुहाय,
सिंह बचा जो लघना तौ भी घास न खाय।

चीटी चावल लै चली बिच मे मिल गई दार,
कह कबीर दोउ ना मिलै, इक ले दूजी डार।

साईं इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय,
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।

नैना अन्तर आव तू नैन झापि तोहि लेव,
ना मैं देखू और को, ना तोहि देखन देव।

रामलीला

पं० माधवप्रसाद मिश्र

मिश्र जी का जन्म पजाब के हिसार जिले के कूँगड़ नामक गाँव में सं० १९२८ मे हुआ और परलोकवास स० १९६४ मे हुआ। ये सनातनधर्म के कट्टर समर्थक तथा भारतीय सस्कृत के बड़े भक्त विद्वान थे। ये बडी ही प्रगल्भ शक्ति के लेखक थे। देवकीनदन खत्री की सहायता से 'सुदर्शन' नामक पत्र निकलवाया जिसके ढाई वर्ष तक ये सम्पादक रहे। सस्कृत के ये प्रकांड पंडित थे। दर्शन, साहित्य और समाज आदि विषयो पर गभीर लेख लिखते थे। धार्मिक संस्कार एव प्राचीन गौरव या सस्कृति पर किसी के आघात करते ही इनकी ओजभरी तीव्र लेखनी चल पड़ती थी। तर्क और आवेश इनकी शैली के विशेष गुण है।

उनका देशप्रेम बड़ा गम्भीर था। दीन-दुखियो की करुण दशा से इनको बड़ी सहानुभूति थी। धारा शैली पर लिखे गये इनके अधिकाश निबन्ध भावात्मक है, जिनमें हृदय पक्ष को स्पर्श करने वाली मधुर और ओजस्विनी शब्दयोजना है। विशुद्धानन्द चरितावली इनकी प्रसिद्ध कृति है।

आर्य्यवश के धर्म-कर्म और भक्ति-भाव का यह प्रवल प्रवाह, जिसने एक दिन जगत् के बडे-बडे सन्मार्ग-विरोधी भूधरो का दर्प दलन कर उन्हे रज मे परिणत कर दिया था और इस परम पवित्र वश का यह विश्वव्यापक

प्रकाश जिसने एक समय जगत् मे अधकार का नाम तक न छोडा था—अब कहाँ है ? इस गूढ एव मर्मस्पर्शी प्रश्न का यही उत्तर मिलता है कि 'वह सब भगवान् महाकाल के महा पेट मे समा गया।' नि सदेह हम भी उक्त प्रश्न का एक यही उत्तर देते है कि 'वह सब भगवान् महाकाल के महा पेट मे समा गया।'

जो अपनी व्यापकता के कारण प्रसिद्ध था, अब उस प्रवाह का प्रकाश भारतवर्ष मे नही है, केवल उसका नाम ही अवशिष्ट रह गया है। कालचक्र से बल, विद्या, तेज, प्रताप आदि सब का चकनाचूर हो जाने पर भी उनका कुछ-कुछ चिह्न वा नाम बना हुआ है, यही डूबते हुए भारतवर्ष का सहारा है और यही अधे भारत के हाथ की लकडी है।

जहाँ महा महा महीधर लुढक जाते थे और अगाध अतल-स्पर्शी जल था, वहाँ अब पत्थरो मे दबी हुई एक छोटी सी कितु सुशीतल वारिधारा बह रही है, जिससे भारत के विदग्ध जनो के दग्ध हृदय का यथाकथचित् सताप दूर हो रहा है। जहाँ के महा प्रकाश से दिग्दिगत उद्भासित हो रहे थे, वहाँ अब एक अँधकार से घिरा हुआ स्नेह-शून्य प्रदीप टिमटिमा रहा है, जिससे कभी-कभी भूभाग प्रकाशित हो रहा है। पाठक! जरा विचार कर देखिए ऐसी अवस्था मे कहाँ कब तक शाति और प्रकाश की सामग्री स्थिर रहेगी? यह किससे छिपा हुआ है कि भारतवर्ष की सुख-शाति और भारतवर्ष का प्रकाश अब केवल 'राम नाम' पर अटक रहा है। 'राम नाम' ही अब केवल हमारे सतप्त हृदय को शातिप्रद है और 'राम नाम' ही हमारे अधे घर का दीपक है।

यह सत्य है कि जो प्रवाह यहाँ तक क्षीण हो गया है कि पर्वतो को उथल देने की जगह आप प्रतिदिन पाषाणो से दब रहा है और लोग इस बात को भूलते चले जा रहे है कि कभी यहाँ भी एक प्रबल नद प्रवाहित हो रहा था, तो उसकी आशा परित्याग कर देनी चाहिए। जो प्रदीप स्नेह

से परिपूर्ण नही है तथा जिसकी रक्षा का कोई उपाय नही है और प्रतिकूल वायु चल रही है वह कब तक सुरक्षित रहेगा ? (परमात्मा न करे) वायु के एक ही झोके मे उसका निर्वाण हो सकता है।

किंतु हमारा वक्तव्य यह है कि वह प्रवाह भगवती भागीरथी की तरह बढने लगे, तो क्या सामर्थ्य है कि कोई उसे रोक सके ? क्योकि वह प्रवाह कृत्रिम प्रवाह नही है, भगवती वसुन्धरा के हृदय का प्रवाह है, जिसे हम स्वाभाविक प्रवाह भी कह सकते है।

जिस दीपक को हम निर्वाणप्राय देखते है, नि सदेह उसकी शोचनीय दशा है और उससे अधकार-निवृत्ति की आशा करना दुराशामात्र है, परतु यदि हमारी उसमे ममता हो और वह फिर हमारे स्नेह से भर दिया जाय तो स्मरण रहे कि वह दीप वह प्रदीप है जो पहले समय मे हमारे स्नेह, ममता और भक्तिभाव का प्रदीप था। उसमे ब्रह्माड को भस्मीभूत कर देने की शक्ति है। वह वही ज्योति है जिसका प्रकाश सूर्य मे विद्यमान है एव जिसका दूसरा नाम अग्निदेव है और उपनिषद् जिसके लिए पुकार रहे है—

"तस्य भासा सर्वमिद विभाति"।

वह प्रदीप भगवान् रामचद्र के पवित्र नाम के अतिरिक्त और कुछ नही है। यद्यपि राम नाम की क्षुद्र प्रदीप के साथ तुलना करना अनुचित है, परतु यह नाम का दोष नही है, हमारे क्षुद्र भाग्य की क्षुद्रता का दोष है कि उनका भक्ति-भाव अब हममे ऐसा ही रह गया है।

कभी हम लोग भी सुख से दिन बिता रहे थे, कभी हम भी भूमडल पर विद्वान् और वीर शब्द से पुकारे जाते थे, कभी हमारी कीर्ति भी दिग्दिगत-व्यापिनी थी, कभी हमारे जय-जयकार से भी आकाश गूँजता था और कभी बडे-बड़े सम्राट् हमारे कृपा-कटाक्ष की भी प्रत्याशा करते थे—इस बात का स्मरण करना भी अब हमारे लिए अशुभचितक हो

रहा है। पर कोई माने या न माने, यहाँ पर खुले शब्दो मे यह कहे बिना हमारी आत्मा नही मानती कि अवश्य हम एक दिन इस सुख के अधिकारी थे। हम लोगो मे भी एक दिन स्वदेशभक्त उत्पन्न होते थे, हममे सौभ्रात्र और सौहार्द का अभाव न था, गुरु-भक्ति और पितृ-भक्ति हमारा नित्य कर्म था, शिष्ट-पालन और दुष्ट-दमन ही हमारा कर्त्तव्य था। अधिक क्या कहे—कभी हम भी ऐसे थे कि जगत् का लोभ हमे अपने कर्त्तव्य से नही हटा सकता था। पर अब वह बात नही है और न उसमे कोई प्रमाण ही है।

हमारे दूरदर्शी महर्षि भारत के मद भाग्य को पहले ही अपनी दिव्य दृष्टि से देख चुके थे कि एक दिन ऐसा आवेगा कि न कोई वेद पढेगा न वेदाग, न कोई इतिहास का अनुसधान करेगा और न कोई पुराण ही सुनेगा! सब अपनी क्षमता को भूल जायँगे। देश आत्मज्ञान-शून्य हो जायगा। इसलिए उन्होने अपने बुद्धि-कौशल से हमारे जीवन के साथ 'राम नाम' का दृढ सबध किया था। यह उन्ही महर्षियो की कृपा का फल है कि जो देश अपनी शक्ति को, तेज को, बल को, प्रताप को, बुद्धि को और धर्म को—अधिक क्या जो अपने स्वरूप तक को भूल रहा है, वह इस शोचनीय दशा मे भी राम नाम को नही भूला है! और जब तक 'राम' स्मरण है, तब तक हम भूलने पर भी कुछ भूले नही है।

महाराज दशरथ का पुत्रस्नेह, श्री रामचद्रजी की पितृभक्ति, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की भ्रातृ-भक्ति, भरतजी का स्वार्थ-त्याग, वशिष्ठ जी का प्रताप, विश्वामित्र का आदर, ऋष्यश्रृग का तप, जानकीजी का पातिव्रत, हनुमानजी की सेवा, विभीषण की शरणागति और रघुनाथजी का कठोर कर्त्तव्य किसको स्मरण नही है? जो अपने "रामचंद्र" को जानता है वह अयोध्या, मिथिला को कब भूला हुआ है। वह राक्षसो के अत्याचार, ऋषियो के तपोबल और क्षत्रियो के धनुर्बाण के फल को अच्छी तरह जानता

है। उसको जब राम नाम का स्मरण होता है और जब वह 'रामलीला' देखता है तभी यह ध्यान उसके जी मे आता है कि 'रावण आदि की तरह चलना न चाहिए, रामादिक के समान प्रवृत्त होना चाहिए।'

बस इसी शिक्षा को लक्ष्य कर हमारे समाज मे 'राम नाम' का आदर बढा। ऐसा पावन और शिक्षाप्रद चरित्र न किसी दूसरे अवतार का और न किसी मनुष्य का ही है। भगवान् रामचद्र देव को हम मर्त्यलोक का राजा नही समझते, अखिल ब्रह्माड का नायक समझते है। यो तो आदरणीय रघुवश मे सभी पुण्यश्लोक महाराज हुए, पर हमारे महाप्रभु 'राम' के समान सर्वत्र रमणशील अन्य कौन हो सकता है? मनुष्य कैसा ही पुरुषोत्तम क्यो न हो वह अत को मनुष्य है। इसलिए आर्य्यवश मे राम ही का जयजयकार हुआ, और है और जब तक एक भी हिदू पृथ्वीतल पर रहेगा, होता रहेगा। हमारे आलाप मे, व्यवहार मे, जीवन मे, मरण मे सर्वत्र 'राम नाम' का सबध है। इस सबध को दृढ रखने के लिए ही प्रतिवर्ष रामलीला होती है। मान लीजिये कि यह सभ्यताभिमानी नवशिक्षितो के नजदीक खिलवाड है, वाहियात और पोपलीला है, पर क्या भावुक जन भी उसे ऐसा ही समझते है? कदापि नही। भगवान् की भक्ति न सही—जिसके हृदय मे कुछ भी जातीय गौरव होगा, कुछ भी स्वदेश की ममता होगी, वह क्या इस बात को देखकर प्रफुल्लित न होगा कि पद-पद-दलित आर्य समाज में इस गिरी हुई दशा के दिनो मे भी कौशल्यानदन आनदवर्द्धन भगवान् रामचद्रजी का विजयोत्सव मनाया जा रहा है?

आठ सौ वर्ष तक हिदुओ के सिर पर कृपाण चलती रही परतु 'रामचद्र जी की जय' तब भी न बद हुई। सुनते है कि औरगजेब ने असहिष्णुता के कारण एक बार कहा था कि 'हिदुओ! अब तुम्हारे राजा रामचंद्र नही हैं, हम है। इसलिए रामचद्र की जय बोलना राज-द्रोह करना है।' औरगजेब का कहना किसी ने न सुना। उसने राज-भक्त हिदुओ का रक्तपात किया

सही, पर 'रामचद्र की जय' को न वद कर सका। कहाँ है वह अभिमानी ? लोग अब रामचद्रजी के विश्व-ब्रह्माड को देखे और उसकी मृण्मय समाधि (कबर) को देखे और फिर कहे कि राजा कौन है। भला कहाँ राजाधिराज रामचद्र और कहाँ एक अहकारी क्षणजन्मा मनुष्य।

एक वे विद्वान् है जो राम और रामायण की प्रशसा करते है, रामचरित्र को अनुकरण-योग्य समझते है एव रामचद्रजी को भक्ति-मुक्ति-दाता मान रहे है, और एक वे लोग है जिनकी युक्तियो का वल केवल एक इसी बात मे लग रहा है कि "रामायण मे जो चरित्र वर्णित है वे सचमुच किसी व्यक्ति के नही है कितु केवल किसी घटना और अवस्था-विशेष का रूपक बाँधके लिख दिए गए है।" निरकुशता और धृष्टता आजकल ऐसी वढी है कि निरर्गलता से ऐसी मिथ्या बातो का प्रचार किया जाता है। इस भ्रात मत का प्रचार करने वाले वेबर साहब यदि यहाँ होते तो हम उन्हे दिखाते कि जिसका वे अपनी विषदग्धा लेखनी से जर्मनी मे वध कर रहे है, वह भारतवर्ष मे व्यापक और अमर हो रहा है।

सूरदास

डा० श्यामसुन्दर दास

डा० श्यामसुन्दर दास का जन्म सं० १९३२ में काशी में खत्री कुल में हुआ था और मृत्यु सं० २००२ में हुई। आप पहले काशी के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में अध्यापक रहे इसके पश्चात् नहर विभाग तथा काश्मीर दरबार में आपने कार्य किया। फिर कालीचरण हाई स्कूल लखनऊ के हेडमास्टर हुए। तत्पश्चात् आप काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर काम करते रहे। सं० १९५० में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना आप ही ने की। और उक्त सभा के द्वारा साहित्यिक शोध आदि का जो रचनात्मक कार्य होता रहा है उसका प्रधान श्रेय आपको ही है। मनोरंजन पुस्तक-माला, हिन्दी शब्दसागर, पृथ्वीराजरासो और हिन्दी वैज्ञानिक कोष का संपादन कार्य आपही ने किया है। स्कूलों के लिए एव कालेज की उच्च कक्षाओ के लिए पाठ्य ग्रन्थ के रूप में आप हिन्दी के कई संकलन करते रहे हैं। युग के अनुसार पाश्चात्य विद्याओं का दिग्दर्शन भी आपने कराया है। इस प्रकार हिन्दी भाषा और साहित्य के ये एक बड़े उन्नायक माने जाते हैं। साहित्यालोचन, भाषा विज्ञान, रूपक-रहस्य, गो० तुलसीदास एवं हिन्दी भाषा और साहित्य आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

अरबी फारसी के विदेशी शब्द प्रायः आपकी भाषा में नहीं आते। तत्सम शब्दों की उसमें प्रचुरता रहती है। आपके निबंध विचारात्मक कोटि के

है। विषय के अनुसार भाषा को नये रूप में ढालने की प्रवृत्ति इनके निबंधो में मिलती है। कही कहीं बात दुहराकर भी वे कहते हैं। धारावाहिक प्रवाह से युक्त सगठित शैली आपकी है और सानुप्रासिक वर्ण मैत्री इनके गद्य की विशेषता है। भावो की व्यञ्जनात्मक शक्ति के प्रसार में इनकी भाषा ने प्रशस्त मार्ग ग्रहण किया है।

वल्लभाचार्य के शिष्यो मे सर्वप्रधान, सूरसागर के रचयिता, हिंदी के अमर-कवि महात्मा सूरदास हुए जिनकी सरल वाणी से देश के असंख्य सूखे हृदय हरे हो उठे और भग्नाश जनता का जीने का नवीन उत्साह मिला। इनका जन्म-सवत् लगभग १५४० था। आगरा से मथुरा जाने वाली सडक के किनारे रुनकता नामक गॉव मे इनकी जन्म-भूमि थी। चौरासी वैष्णवो की वार्ता तथा भक्तमाल के साक्ष्य से ये सारस्वत ब्राह्मण ठहरते है, यद्यपि कोई-कोई इन्हे महाकवि चद वरदाई के वशज भाट कहते हैं। इनके अधे होने के सबध मे यह प्रवाद प्रचलित है कि वे जन्म से अधे थे, पर एक वार जब वे कुएँ मे गिर पडे थे तब श्रीकृष्ण ने उन्हे दर्शन दिये थे और वे दृष्टि-सपन्न हो गए थे। परतु उन्होने कृष्ण से यह कहकर अधे बने रहने का वर मॉग लिया कि जिन ऑखो से भगवान् के दर्शन किये, उनसे अब किसी मनुष्य को न देखे। इस प्रवाद का आधार उनके दृष्ट-कूटो की एक टिप्पणी है। इसे असत्य न मानकर यदि एक प्रकार का रूपक मान ले तो कोई हानि नही। सूर वास्तव मे जन्माध नही थे, क्योकि शृगार तथा रग-रूपादि का जो वर्णन उन्होने किया है वैसा कोई जन्माध नही कर सकता। जान पडता है, कुएँ मे गिरने के उपरात उन्हें कृष्ण की कृपा से ज्ञान-चक्षु मिले, पहले इस चक्षु से वे हीन थे। यही आशय उक्त कहानी से ग्रहण किया जा सकता है।

जब महात्मा वल्लभाचार्य से सूरदासजी की भेट हुई थी तब तक वे वैरागी के वेप मे रहा करते थे। तब से ये उनके शिष्य हो गये और उनकी आज्ञा से नित्य-प्रति अपने उपास्य देव और सखा कृष्ण की स्तुति मे नवीन भजन बनाने लगे। इनकी रचनाओ का बृहत् सग्रह सूरसागर है, जिसमे एक ही प्रसग पर अनेक पदो का सकलन मिलता है। भक्ति के आवेश मे वीणा के साथ गाते हुए जो सरस पद उन अध कवि के मुख से निस्सृत हुए, उनमे पुनरुक्ति चाहे भले ही हो, पर उनकी मर्मस्पर्शिता और हृदयहारिता मे किसी को कुछ भी सदेह नही हो सकता।

सूरसागर के सबध मे कहा जाता है कि उसमे सवा लाख पदो का सग्रह है, पर अब तक सूरसागर की जो प्रतियाँ मिली है उनमे छ हजार से अधिक पद नही मिलते। परतु यह सख्या भी बहुत बडी है। इतनी ही कविता उसके रचयिता को सरस्वती का वरद महाकवि सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है। इस ग्रथ मे कृष्ण की बाल-लीला से ले कर उनके गोकुल-त्याग और गोपिकाओ के विरह तक की कथा फुटकर पदो मे कही गई है। ये पद मुक्तक के रूप मे होते हुए भी एक भाव को पूर्णता तक पहुँचा देते है। सभी पद गेय है, अत सूरसागर को हम गीत-काव्य कह सकते है। गीत-काव्य मे जिस प्रकार छोटे-छोटे रमणीय प्रसगों को लेकर रचना की जाती है, प्रत्येक पद जिस प्रकार स्वत पूर्ण तथा निरपेक्ष होता है, कवि के आतरिक हृदयोद्गार होने के कारण उसमे जैसे कवि की अतरात्मा झलकती देख पड़ती है, विवरणात्मक कथा-प्रसगो का बहिष्कार कर तथा क्रोध आदि कठोर और कर्कश भावो का सन्निवेश न कर उसमे जैसे सरसता और मधुरता के साथ कोमलता रहती है, उसी प्रकार सूरसागर के गेय पदो मे उपर्युक्त सभी बाते पाई जाती है। यद्यपि कृष्ण की पूरी जीवन-गाथा भी सूरसागर मे मिलती है, पर उसमे कथा कहने की प्रवृत्ति

बिलकुल नही देख पडती, केवल प्रेम, विरह आदि विभिन्न भावो की वेगपूर्ण व्यजना उसमे बडी ही सुदर बन पडी है।

सूरसागर मे कृष्ण-जन्म से कथा का आरभ हुआ हैं। यशोदा के गृह मे पहुँचकर कृष्ण धीरे-धीरे बडे होने लगे। उस काल की उनकी बाल-लीलाओ का जितना विशद वर्णन सूरदास ने किया उतना हिंदी के अन्य किसी कवि ने नही किया। कृष्ण अभी कुछ ही महीनो के है, माँ का दूध पीते है, माँ यह अभिलाषा करती है कि बालक कब बडा होगा, कब इसके दो नन्हे नन्हे दाँत जमेगे, कब वह माँ कहकर पुकारेगा, कब घुटनो के बल घर-भर मे रेगता फिरेगा आदि आदि। माँ बालक को दूध पिलाती है, न पीने पर उसे चोटी बढने का लालच दिखाती है। उसे आकाश के चद्रमा के लिए रोते देख थाल मे पानी भर कर चाँद को बालक के लिए भूमि पर ला देती है। कितना वात्सल्य स्नेह, कितना सूक्ष्म निरीक्षण और कितना वास्तविक वर्णन है। इस प्रकार के असख्य सूक्ष्म भावो से युक्त अनेक रस-पूर्ण पद कहे गए है। कृष्ण कुछ बडे होते है। मणि-खभो मे अपना प्रतिबिंब देखकर प्रसन्न होते और मचलते है। घर की देहली नही लाँघ पाते। सब कुछ सत्य है और आनदप्रद है। कृष्ण और बडे होते है, वे घर से बाहर जाते, गोप सखाओ के साथ खेलते-कूदते और बाल्य चापल्य प्रदर्शित करते है। उनके माखन-चोरी आदि प्रसगो मे गोपिकाओ के प्रेम की व्यजना भरी पडी है। गोपियाँ बाहर से यशोदा के पास उपालभ आदि लाती है, पर हृदय से वे कृष्ण की लीलाओ पर मुग्ध है। प्रेम का यह अकुर बडी ही शुद्ध परिस्थिति मे देख पडता है। कृष्ण की यह किशोरावस्था है, कलुष या वासना का नाम भी नही है। शुद्ध स्नेह है। आगे चलकर कृष्ण सारे व्रज-मडल मे सब के स्नेह-भाजन बन जाते है। उनका गोचारण उन्हे मनुष्यो के परिमित क्षेत्र से ऊपर उठा कर पशुओ के जगत् तक पहुँचा देता है। वशीवट और यमुना-कुँजो की रमणीक स्थली मे कृष्ण की जो

सुदर मूर्ति गोप-गोपिकाओ के साथ मुरली बजाते और स्नेह-लीला करते अकित की गई है, वैसी सुषमा का चित्रण करने का सौभाग्य सभवत ससार के किसी अन्य कवि को नही मिला। व्रज-मडल की यह महिमा अपार है। कृष्ण का व्रज-निवास स्वर्ग को भी ईर्षालु करने की क्षमता रखता है।

गोपिकाओ का स्नेह बढता है। वे कृष्ण के साथ रास-लीला मे सम्मिलित होती है, अनेक उत्सव मनाती है। प्रेममयी गोपिकाओ का यह आचरण बडा ही रमणीय है। उसमे कही से अस्वाभाविकता नही आ सकी। कोई कृष्ण की मुरली चुराती, कोई उन्हे अबीर लगाती और कोई चोली पहनाती है। कृष्ण भी किसी की वेणी गूथते, किसी की आँखे मूँद लेते और किसी को कदम के तले वशी बजा कर सुनाते है। एकाध बार उन्हे लज्जित करने की इच्छा से चीर-हरण भी करते है। गोपी-कृष्ण की यह सयोग-लीला भक्तो का सर्वस्व है।

सयोग के उपरात वियोग होता है। कृष्ण वृन्दावन छोड कर मथुरा चले जाते है। वहाँ राजकार्यो मे सलग्न हो जाने के कारण प्यारी गोपियो को भूल-से जाते है। गोपिकाएँ विरह मे व्याकुल नित्य-प्रति उनके आने की प्रतीक्षा मे दिन काटती है। कृष्ण नही आते। गोपियो के भाग्य का यह व्यग्य उन्हे कुछ देर के लिए विचलित कर देता है। पर ऊधो के ज्ञानोपदेश वे स्वीकार नही करती। कृष्ण की साकार अनत सौदर्यशालिनी मूर्ति उनके हृदय-पटल पर अमिट अकित है। कृष्ण चाहे जहाँ रहे, वे उन्हे भूल नही सकती। यह अनत प्रेम का दिव्य सदेश भक्तो के हृदय का दृढ अवलब है।

इसी कथानक के बीच कृष्ण के लोक-रक्षक स्वरूप की व्यंजना करते हुए उनमे असीम शक्ति की प्रतिष्ठा की गई है। थोडी आयु में ही वे पूतना जैसी महाकाय राक्षसी का वध कर डालते है। आगे चल कर केशी, बकासुर आदि दैत्यो के वध और कालीय-दमन आदि प्रसगो को ला कर कृष्ण के बल और वीरता का प्रदर्शन किया गया है। परतु हमको यह

स्वीकार करना पडता है कि सूरदास ने ऐसे वर्णनो की ओर यथोचित ध्यान नही दिया है। सूरदास के कृष्ण महाभारत के कृष्ण की भाँति नीतिज्ञ और पराक्रमी नही है, वे केवल प्रेम के प्रतीक और सौंदर्य की मूर्ति है।

कृष्ण के शील का भी थोडा-बहुत आभास सूर ने दिया है। माता यशोदा जब उन्हे दड देती है, तब वे रोते-कलपते हुए उसे स्वीकार करते है। इसी प्रकार जब गोचारण के समय उनके लिए छाक आती है, तब वे अकेले ही नही खाते, सब को बाँट कर खाते है और कभी किसी का जूठा लेकर भी खा लेते है। बडे भाई बलदेव के प्रति भी उनका सम्मान्य भाव बराबर बना रहा है। यह सब होते हुए भी यह कहना पडता है कि सूरदास मे कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति की ही प्रधानता है, रामचरित-मानस की भाँति उसमें लोकादर्श की ओर ध्यान नही दिया गया।

सूरदास ने फुटकर पदो मे राम-कथा भी कही है, पर वह वैसी ही बन पडी है, जैसे तुलसी की कृष्ण-गीतावली। इसके अतिरिक्त उनके कुछ दृष्टि-कूट और कूट पद भी है, जिनकी क्लिष्टता का परिहार विशेषज्ञ ही कर सकते है। काव्य की दृष्टि से कूटो की गणना निम्न श्रेणी मे होगी। सूरदास की कीर्ति को अमर कर देने और हिंदी-कविता मे उन्हे उच्चासन प्रदान करने के लिए उनका बृहदाकार ग्रथ सूरसागर ही पर्याप्त है। सूरसागर हिंदी की अपने ढग की अनुपम पुस्तक है। शृगार और वात्सल्य का जैसा सरस और निर्मल स्रोत इसमे बहा है वैसा अन्यत्र नही देख पडता। सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावो तक सूर की पहुँच है, साथ ही जीवन का सरल अकृत्रिम प्रवाह भी उनकी रचनाओ मे दर्शनीय है। यह ठीक है कि लोक के सबध मे गभीर व्याख्याएँ सूरदास ने अधिक नही की, पर मनुष्य-जीवन मे कोमलता, सरलता और सरसता भी उतनी ही प्रयोजनीय है, जितनी गभीरता। तत्कालीन स्थिति को देखते हुए तो सूरदास का उद्योग और भी स्तुत्य है। परतु उनकी कृति तत्कालीन स्थिति से सबध रखती हुई भी, सर्वकालीन

और चिरंतन है। उनकी उत्कट कृष्ण-भक्ति ने उनकी सारी रचनाओं में जो रमणीयता भर दी है, वह अतुलनीय है। उनमे नवोन्मेपशालिनी अद्भुत प्रतिभा है। उनकी पवित्र वाणी मे जो अनूठी उक्तियाँ आप से आप आकर मिल गई है, अन्य कवि उनकी जूठन से ही सतोषकर सकते है। सूरदास हिदी के अन्यतम कवि है। उनके जोड का कवि गोस्वामी तुलसीदास को छोड कर दूसरा नही है। इन दोनो महाकवियो मे कौन बडा है, यह निश्चयपूर्वक कह सकना सरल काम नही। भाषा पर अवश्य तुलसीदास का अधिकार अधिक व्यापक था। सूरदास ने अधिकतर ब्रज की चलती भाषा का ही प्रयोग किया है। तुलसी ने ब्रज और अवधी दोनो का प्रयोग किया है और सस्कृत का पुट दे कर उनको पूर्ण साहित्यिक भाषा बना दिया है। परतु भाषा को हम काव्य-समीक्षा मे अधिक महत्त्व नही देते। हमे भावो की तीव्रता और व्यापकता पर विचार करना होगा। तुलसी ने रामचरित का आश्रय लेकर जीवन को अनेक परिस्थितियो तक अपनी पहुंच दिखलाई है। सूरदास के कृष्णचरित्र मे उतनी व्यापकता नही। इस दृष्टि से तुलसी सूर से ऊँचे ठहरते है, परतु दोनो की वाणी मे पूत भावनाएं एक-सी है। मधुरता सूर मे तुलसी से अधिक है। जीवन के अपेक्षाकृत सकीर्ण क्षेत्र को ले कर उसमे अपनी प्रतिभा का पूर्ण चमत्कार दिखा देने मे सूर की सफलता अद्वितीय है। सूक्ष्मदर्शिता मे भी सूर अपना जोड नही रखते। तुलसी का क्षेत्र सूर की अपेक्षा विस्तृत है, लोक-कल्याण की दृष्टि से भी उनकी रचनाएँ अधिक शक्तिशालिनी और महत्त्वपूर्ण है, पर शुद्ध कवित्व की दृष्टि से दोनो का समान अधिकार है। हम तुलसी को हिदी का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते है, पर सूरदास के सबध मे कहे गए निम्नाकित दोहे को हम अनुचित नही समझते—

सूर सूर तुलसी ससी, उडगन केसवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकाश॥

पछतावा

प्रेमचद

श्री प्रेमचंद का यथार्थ नाम धनपत राय है। इनका जन्म सं० १९३७ में एक प्रतिष्ठित घराने में हुआ था और निधन सं० १९९४ मे हुआ। संयुक्त प्रान्त के शिक्षा-विभाग में आप पहले सब-डिप्टी इन्सपेक्टर थे। बाद में गोरखपुर नार्मल स्कूल में अध्यापक रहे। स० १९७८ से आप साहित्य सेवा में लग गये थे। 'हस', 'जागरण', 'माधुरी' का सपादनकार्य भी आप कर चुके है। आप पहले उर्दू में कहानी लिखते थे परन्तु फिर राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रेम ने इन्हें अपना लिया। आप ही उच्चकोटि के प्रथम मौलिक उपन्यासकार थे। अन्तः प्रकृति का विश्लेषण प्रधान रूप से इनमें मिला और वस्तु सगठन की स्वाभाविकता भी इनमें मिली। आपने उपन्यास और कहानियो को बड़ा गौरव प्रदान किया है। कोमलता चाहे कम हो पर उसमे ठोसपन है। 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रगभूमि', 'गबन', 'कायाकल्प', 'गोदान' आदि आपके प्रसिद्ध उपन्यास है। 'सप्तसरोज', 'नवनिधि', 'प्रेम पीयूष', 'प्रेम द्वादशी', आदि आपके कई कहानी सग्रह है। 'सग्राम' और 'कर्बला' आपके नाटक भी है। प्रेमचदजी सामयिक जीवन के सफल चित्रकार है। तटस्थ हो कर घटनाओ और व्यक्तियो के निरीक्षण की शक्ति इनमें प्रचुर मात्रा में मिलती है। दलित मानवता के प्रति, उपेक्षित ग्रामीणो के प्रति इनकी बडी सहानुभूति रही है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पक्षपाती ये बुद्धिवादी लेखक थे। सेवामय सद्जीवन की प्रेरणा इनके साहित्य से मिलती है।

इनकी सरल मुहाविरेदार बोलचाल की भाषा टकसाली समझी जाती है, मीठी चुटकियों से वे खूब काम लेते थे। कहानी लेखक के रूप में इनका स्थान उपन्यासकार की उपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। चरित्र चित्रण एव मनोवैज्ञानिक सत्य के प्रकाशन मे इनकी विशेष कला है। अंध-विश्वास एवं नैतिक कुरीतियों के परिहास में वे सचेष्ट रहे हैं। हमारे साहित्य के पैरो मे पड़ी दासता की बेडियाँ प्रेमचंद जी ने ही सब से पहिले तोडी है। वे हिन्दी के प्रथम ऐसे लेखक हैं जिनकी रचना के अनुवाद बँगला, मराठी, गुजराती आदि देशी भाषाओ में ही नही प्रत्युत जापानी, अँगरेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी हुए हैं। विश्व के श्रेष्ठतम कथा-लेखको में इनकी गणना है।

(१)

पडित दुर्गानाथ जब कालेज से निकले तो उन्हे जीवन-निर्वाह की चिन्ता उपस्थित हुई। वे दयालु और धार्मिक पुरुष थे। इच्छा थी कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे अपना जीवन भी साधारणत सुखपूर्वक व्यतीत हो और दूसरो के साथ भलाई और सदाचरण का भी अवसर मिले। वे सोचने लगे—यदि किसी कार्यालय मे क्लर्क बन जाऊँ तो अपना निर्वाह तो हो सकता है किन्तु सर्वसाधारण से कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा। वकालत में प्रविष्ट हो जाऊँ तो दोनो बाते सम्भव हैं, किन्तु अनेकानेक यत्न करने पर भी अपने को पवित्र रखना कठिन होगा। पुलिस-विभाग मे दीनपालन और परोपकार के लिए बहुत-से अवसर मिलते रहते हैं, किन्तु एक स्वतत्र और सद्विचारप्रिय मनुष्य के लिए वहाँ की हवा हानिप्रद है। शासन-विभाग मे नियम और नीतियो की भरमार रहती है। कितना ही चाहो पर वहाँ कडाई और डाँट-डपट से बचे रहना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सोच-विचार के पश्चात् उन्होने निश्चय

किया कि किसी जमीदार के यहाँ 'मुख्तार आम' बन जाना चाहिए। वेतन तो अवश्य कम मिलेगा, किन्तु दीन खेतिहरो से रातदिन सम्बन्ध रहेगा—उनके साथ सद्व्यवहार का अवसर मिलेगा, साधारण-जीवन निर्वाह होगा और विचार दृढ होगे।

कुँवर विशालसिहजी एक सम्पत्तिशाली जमीदार थे। पडित दुर्गानाथ ने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि मुझे भी अपनी सेवा मे रख कर कृतार्थ कीजिए। कुँवर साहब ने इन्हे सिर से पैर तक देखा और कहा—पडितजी, आपको अपने यहाँ रखने मे मुझे बडी प्रसन्नता होती, किंतु आपके योग्य मेरे यहाँ कोई स्थान नही देख पडता।

दुर्गानाथ ने कहा—मेरे लिए किसी विशेष स्थान की आवश्यकता नही है। मै हर एक काम कर सकता हूँ। वेतन आप जो कुछ प्रसन्नता-पूर्वक देगे मैं स्वीकार करूँगा। मैने तो यह सकल्प कर लिया है कि सिवा किसी रईस के और किसी की नौकरी न करूँगा।

कुँवर विशालसिह ने अभिमान से कहा—रईस की नौकरी नौकरी नही, राज्य है। मै अपने चपरासियो को दो रुपया माहवार देता हूँ और वे तजेब के अँगरखे पहन कर निकलते है। उनके दरवाजो पर घोडे बँधे हुए है। मेरे कारिन्दे पाँच रुपये से अधिक नही पाते किन्तु शादीविवाह वकीलो के यहाँ करते है। बरसो तनख्वाह का हिसाब नही करते। कितने ऐसे है जो बिना तनख्वाह के कारिन्दगी या चपरासगीरी को तैयार बैठे है। परन्तु अपना यह नियम नही। समझ लीजिए, मुख्तार आम अपने इलाक़े मे एक बडे जमीदार से भी अधिक रौब रखता है। उसका कारबार उसकी हुकूमत छोटे-छोटे राजाओ से कम नही। जिसे इस नौकरी का चसका लग गया है, उसके सामने तहसीलदारी झूठी है।

पडित दुर्गानाथ ने कुँवर साहब की बातो का समर्थन न किया, जैसा कि करना उनको सभ्यतानुसार उचित था। वे दुनियादारी मे अभी कच्चे

थे, बोले—मुझे अब तक किसी रईस की नौकरी का चसका नही लगा है। मैं तो अभी कालेज से निकला आता हूँ। और न मैं इन कारणो से नौकरी करना चाहता हूँ जिन्हें आपने वर्णन किया। किन्तु इतने कम वेतन मे मेरा निर्वाह न होगा आपके और नौकर असामियो का गला दबाते होगे। मुझसे मरते समय तक ऐसे कार्य न होगे। यदि सच्चे नौकर का सम्मान होना निश्चय है, तो मुझे विश्वास है कि बहुत शीघ्र आप मुझसे प्रसन्न हो जायँगे।

कुँवर साहब ने बडी दृढता से कहा—हाँ, यह तो निश्चय है कि सत्यवादी मनुष्य का आदर सब कही होता है। किन्तु मेरे यहाँ तनख्वाह अधिक नही दी जाती।

जमीदार के इस प्रतिष्ठा-शून्य उत्तर को सुनकर पडितजी कुछ खिन्न हृदय से बोले—तो फिर मजबूरी है। मेरे द्वारा इस समय कुछ कष्ट आपको पहुँचा हो तो क्षमा कीजिएगा। किन्तु मै आपसे यह कह सकता हूँ कि ईमानदार आदमी आपको इतना सस्ता न मिलेगा।

कुँवर साहब ने मन मे सोचा कि मेरे यहाँ सदा अदालत कचहरी लगी ही रहती है। सैकडो रुपये तो डिगरी और तजवीजो तथा और-और अग्रेजी कागजो के अनुवाद मे लग जाते है। एक अगरेजी का पूर्ण पडित सहज मे मुझे मिल रहा है। सो भी अधिक तनख्वाह नही देनी पडेगी। इसे रख लेना ही उचित है। लेकिन पडितजी की बात का उत्तर देना आवश्यक था, अत कहा—महाशय, सत्यवादी मनुष्य को कितना ही कम वेतन दिया जावे किन्तु वह सत्य को न छोडेगा और न अधिक वेतन पाने से बेईमान सच्चा बन सकता है। सच्चाई का रुपये से कुछ सम्बन्ध नही। मैने ईमानदार कुली देखे है और बेईमान बडे बडे धनाढ्य पुरुष। परन्तु अच्छा, आप एक सज्जन पुरुष है। आप मेरे यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहिए।

मै आपको एक इलाके का अधिकारी वना दूगा और आपका काम देख कर तरक्की भी कर दूगा।

दुर्गानाथ जी ने २०) मासिक पर रहना स्वीकार कर लिया। यहाँ से कोई ढाई मील पर कई गाँवो का एक इलाका चाँदपार के नाम से विख्यात था। पंडितजी इसी इलाके के कारिन्दे नियत हुए।

(२)

पडित दुर्गानाथ ने चाँदपार के इलाके मे पहुँच कर अपने निवासस्थान को देखा, तो उन्होने कुँवर साहब के कथन को विलकुल सत्य पाया। यथार्थ मे रियासत की नौकरी सुख-सम्पत्ति का घर है। रहने के लिए सुन्दर बँगला है, जिसमे वहुमूल्य विछौना विछा हुआ था, सैकडो वीघे की सीर, कई नौकर-चाकर, कितने ही चपरासी, सवारी के लिए एक सुन्दर टाँगन; सुख और ठाट-बाट के सारे सामान उपस्थित। किन्तु इस प्रकार की सजावट और विलास-युक्त सामग्री देख कर उन्हे उतनी प्रसन्नता न हुई। क्योकि इसी सजे हुए बँगले के चारो ओर किसानो के झोपडे थे, फूस के घरो मे मिट्टी के वर्तनो के सिवा और सामान ही क्या था। वहाँ के लोगो मे वह बँगला कोट के नाम से विख्यात था। लडके उसे भय की दृष्टि से देखते। उसके चवूतरे पर पैर रखने का उन्हे साहस न पडता। इस दीनता के बीच मे यह ऐश्वर्य उनके लिए न्याय से कोसो दूर था। किसानो की यह दशा थी कि सामने आते हुए थरथर काँपते थे। चपरासी लोग उनमे ऐसा वरताव करते थे कि पशुओ के साथ भी वैसा नही होता है।

पहले ही दिन कई सौ किसानो ने पडितजी को अनेक प्रकार के पदार्थ भेट के रूप मे उपस्थित किये, किन्तु जव वे सव लौटा दिये गए तो उन्हे वहुत ही आश्चर्य हुआ। किसान प्रसन्न हुए, किन्तु चपरासियो का रक्त उवलने लगा। नाई और कहार खिदमत को आए, किन्तु लौटा दिये गये।

अहीरो के घरो से दूध से भरा हुआ एक मटका आया, वह भी वापस हुआ। तमोली एक ढोली पान लाया, किन्तु वह भी स्वीकार न हुआ। असामी आपस मे कहने लगे कि धरमात्मा पुरुष आए है। परन्तु चपरासियो को तो ये नई बाते असह्य हो गई। उन्होने कहा—हुजूर, अगर आपको ये चीज़े पसन्द न हो तो न ले, मगर रस्म को तो न मिटावे। अगर कोई दूसरा आदमी यहाँ आवेगा तो उसे नये सिरे से यह रस्म बाँधने मे कितनी दिक्कत होगी ?

यह सब सुनकर पडितजी ने केवल यही उत्तर दिया—जिसके सिर पर पडेगा वह भुगत लेगा। मुझे इसकी चिन्ता करने की क्या आवश्यकता? एक चपरासी ने साहस बाँधकर कहा— इन असामियो को आप जितना गरीब समझते है उतने गरीब ये नही है। इनका ढग ही ऐसा है, भेष बनाए रहते है। देखने मे ऐसे सीधे-सादे मानो बेसीग की गाय है, लेकिन सच मानिए, इनमे का एक-एक आदमी हाईकोरट का वकील है।

चपरासियो के इस वादविवाद का प्रभाव पडितजी पर कुछ न हुआ। उन्होने प्रत्येक गृहस्थ से दयालुता और भाईचारे का आचरण करना आरम्भ किया। सवेरे से ८ बजे तक वे गरीबो को बिना दाम औषधियाँ देते, फिर हिसाब-किताब का काम देखते। उनके सदाचरण ने असामियो को मोह लिया। मालगुजारी का रुपया जिसके लिए प्रतिवर्ष कुरकी तथा नीलाम की आवश्यकता होती थी इस वर्ष एक इशारे पर वसूल हो गया। किसानो ने अपने भाग सराहे और वे मनाने लगे कि हमारे सरकार की दिनोदिन बढती हो।

(३)

कुँवर विशालसिह अपनी प्रजा के पालन-पोषण पर बहुत ध्यान रखते थे। वे बीज के लिए अनाज देते और मजूरी और बैलो के लिए रुपये। फसल कटने पर एक का डेढ वसूल कर लेते। चाँदपार के कितने ही असामी इनके

ऋणी थे। चैत का महीना था। फसल कट-कट कर खलियानो मे आ रही थी। खलियानो मे से कुछ नाज घर आने लगा था।

इसी अवसर पर कुँवर साहब ने चाँदपार वालो को बुलाया और कहा—हमारा नाज और रुपया बेबाक कर दो। यह चैत का महीना है। जब तक कडाई न की जाय, तुम लोग डकार नही लेते। इस तरह काम नही चलेगा।

बूढे मलूका ने कहा—सरकार, भला असामी कभी अपने मालिक से बेबाक हो सकता है? कुछ अभी ले लिया जाय, कुछ फिर दे देवेगे। हमारी गर्दन तो सरकार की मुट्ठी मे है।

कुँवर साहब—आज कौडी कौडी चुका कर यहाँ से उठने पाओगे। तुम लोग हमेशा इसी तरह हीला-हवाला किया करते हो।

मलूका (विनय के साथ)—हमारा पेट है, सरकार की रोटियाँ है, हमको और क्या चाहिए। जो कुछ उपज है वह सब सरकार ही की है।

कुँवर साहब से मलूका की वाचालता सही न गई। उन्हे इस पर क्रोध आ गया, राजा रईस ठहरे। उन्होने बहुत कुछ खरी खोटी सुनाई और कहा—कोई है! जरा इस बुड्ढे का कान तो गरम करे, बहुत बढ-बढ कर बाते करता है। उन्होने तो कदाचित् धमकाने की इच्छा से कहा, किन्तु चपरासियो की आँखो में चाँदपार खटक रहा था। एक तेज चपरासी कादिर खाँ ने लपक कर बूढे की गर्दन पकडी और ऐसा धक्का दिया कि बेचारा जमीन पर जा गिरा। मलूका के दो जवान बेटे वहाँ चुपचाप खडे थे। बाप की ऐसी दशा देख कर उनका रक्त गर्म हो उठा। दोनो झपटे और कादिर खाँ पर टूट पडे। धमाधम शब्द सुनाई पडने लगा। खाँ साहब का पानी उतर गया, साफा अलग जा गिरा। अचकन के टुकडे-टुकडे हो गए। किन्तु ज़बान चलती रही।

मलूका ने देखा, बात बिगड गई। वह उठा और कादिर खाँ को छुडा कर अपने लडको को गालियाँ देने लगा।

जब लडको ने उसी को डाँटा, तब दौड कर कुँवर साहब के चरणो पर गिर पडा। पर बात यथार्थ मे बिगड गई थी। बूढे के इस विनीत भाव का कुछ प्रभाव न हुआ। कुँवर साहब की आँखो से मानो आग के अँगारे निकल रहे थे। वे बोले—बेईमान, आँखो के सामने से दूर हो जा। नही तो तेरा खून पी जाऊँगा।

बूढे के शरीर मे रक्त तो अब वैसा न रहा था किन्तु कुछ गर्मी अवश्य थी। समझता था कि ये कुछ न्याय करेंगे, परन्तु यह फटकार सुन कर बोला—सरकार बुढापे मे आपके दरवाजे पर पानी उतर गया और तिस पर सरकार हमी को डाँटते है।

कुँवर साहब ने कहा—तुम्हारी इज्जत अभी क्या उतरी है, अब उतरेगी।

दोनो लडके सरोष बोले—सरकार अपना रुपया लेगे कि किसी की इज्जत लेंगे ?

कुँवर साहब (ऐंठ कर)—रुपया पीछे लेगे। पहले देखेगे कि तुम्हारी इज्जत कितनी है।

(४)

चाँदपार के किसान अपने गाँव पर पहुँच कर पडित दुर्गानाथ से अपनी रामकहानी कह ही रहे थे कि कुँवर साहब का दूत पहुँचा और खबर दी कि सरकार ने आपको अभी-अभी बुलाया है।

दुर्गानाथ ने असामियो को परितोष दिया और आप घोडे पर सवार हो कर दरबार मे हाजिर हुए।

कुँवर साहब की आँखे लाल थी। मुख की आकृति भयकर हो रही थी। कई मुख्तार और चपरासी बैठे हुए आग पर तेल डाल रहे थे।

पण्डितजी को देखते ही कुँवर साहब बोले—चाँदपार वालो की हरकत आपने देखी ?

पडितजी ने नम्र भाव से कहा—जी हाँ, सुन कर बहुत शोक हुआ। ये तो ऐसे सरकश न थे।

कुँवर साहब—यह सब आप ही के आगमन का फल है, आप अभी स्कूल के लडके है। आप क्या जाने कि ससार मे कैसे रहना होता है। यदि आपका बर्ताव असामियो के साथ ऐसा ही रहा तो फिर मै ज़मीदारी कर चुका। यह सब आपकी करनी है। मैने इसी दरवाज़े पर असामियो को बाँध-बाँध कर उलटे लटका दिया है और किसी ने चूँ तक न की। आज उनका यह साहस कि मेरे ही आदमी पर हाथ चलाये।

दुर्गानाथ (कुछ दबते हुए)—महाशय, इसमे मेरा क्या अपराध ? मैने तो जब से सुना है तभी से स्वय सोच मे पडा हूँ।

कुँवर साहब—आपका अपराध नही तो किसका है ? आप ही ने तो इनको सर चढाया, बेगार बन्द कर दी, आप ही उनके साथ भाईचारे का बर्ताव करते है, उनके साथ हँसी मजाक करते है। ये छोटे आदमी इस बर्ताव की कदर क्या जाने। किताबी बाते स्कूलो ही के लिए है। दुनिया के व्यवहार का कानून दूसरा है। अच्छा जो हुआ सो हुआ। अब मै चाहता हूँ कि इन बदमाशो को इस सरकशी का मजा चखाया जाय। असामियो को आपने मालगुजारी की रसीदे तो नही दी है ?

दुर्गानाथ (कुछ डरते हुए)—जी नही, रसीदे तैयार है, केवल आपके हस्ताक्षरो की देर है।

कुँवर साहब (कुछ सतुष्ट हो कर)—यह बहुत अच्छा हुआ। शकुन अच्छे है। अब आप रसीदो को चिराग अली के सिपुर्द कीजिए। इन लोगो पर बकाया लगान की नालिश की जायगी, फसल नीलाम करा लूँगा। जब भूखो मरेगे सूझेगी। जो रुपया अब तक वसूल हो चुका है, वह बीज

और ऋण के खाते में चढा लीजिए। आपको केवल यही गवाही देनी होगी कि यह रुपया मालगुज़ारी के मद में नही, कर्ज़ के मद मे वसूल हुआ है। बस।

दुर्गानाथ चिंतित हो गये। सोचने लगे कि क्या यहाँ भी उसी आपत्ति का सामना करना पडेगा, जिससे वचने के लिए, इतने सोच-विचार के बाद, इस शान्तिकुटीर को ग्रहण किया था ? क्या जान बूझ कर इन गरीबो की गर्दन पर छूरी फेरूँ, इसलिए कि मेरी नौकरी वनी रहे ? नही, यह मुझसे न होगा। बोले—क्या मेरी शहादत विना काम न चलेगा ?

कुँवर साहब (क्रोध से)—क्या इतना कहने में भी आपको कोई उज्र है ?

दुर्गानाथ (द्विविधा मे पडे हुए)—जी, यो तो मैंने आपका नमक खाया है। आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना मुझे उचित है, किन्तु न्यायालय मे मैंने गवाही कभी नही दी है। सम्भव है कि यह कार्य मुझसे न हो सके। अत मुझे तो क्षमा ही कर दिया जाय।

कुँवर साहब (शासन के ढग से)—यह काम आपको करना पडेगा, इसमे आगा-पीछा की गुजाइश नही। आग आपने लगाई है, बुझावेगा कौन ?

दुर्गानाथ (दृढता के साथ)—मैं झूठ कदापि नही बोल सकता, और न इस प्रकार शहादत दे सकता हूँ।

कुँवर साहब (कोमल शब्दो मे)—कृपानिधान, यह झूठ नही है। मैंने झूठ का व्यापार नही किया है। मै यह नही कहता कि आप रुपये का वसूल होना अस्वीकार कर दीजिये। जब असामी मेरा ऋणी है, तो मुझे अधिकार है कि चाहे रुपया ऋण के मद मे वसूल करूँ या मालगुज़ारी के मद मे। यदि इतनी सी बात को आप झूठ समझते है तो आपकी ज़बरदस्ती है। अभी आपने ससार देखा नही। ऐसी सच्चाई के लिए ससार में स्थान

नही। आप मेरे यहाँ नौकरी कर रहे है। इस सेवकधर्म पर विचार कीजिए। आप शिक्षित और होनहार पुरुष है। अभी आपको ससार मे वहुत दिन तक रहना है और वहुत काम करना है। अभी से आप यह धर्म और सत्यता धारण करेगे तो अपने जीवन मे आपको आपत्ति और निराशा के सिवा और कुछ प्राप्त न होगा। सत्यप्रियता अवश्य उत्तम वस्तु है किन्तु उसकी भी सीमा है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। अव अधिक सोच विचार की आवश्यकता नही। यह अवसर ऐसा ही है?

कुँवर साहव पुराने खुर्राट थे। इस फेंकनैत से युवक खिलाडी हार गया।

(५)

इस घटना के तीसरे दिन चाँदपार के असामियो पर वकाया लगान की नालिश हुई। समन आये। घर-घर उदासी छा गई। समन क्या थे यम के दूत थे। देवी देवताओ की मिन्नतें होने लगी। स्त्रियाँ अपने घर वालो को कोसने लगी, और पुरुष अपने भाग्य को। नियत तारीख के दिन गाँव के गँवार कन्धे पर लोटा-डोरी रखे और अँगोछे मे चवेना वाँधे कचहरी को चले।

सैकडो स्त्रियाँ और वालक रोते हुए उनके पीछे-पीछे जाते थे। मानो अव वे फिर उनसे न मिलेंगे।

पडित दुर्गानाथ के लिए ये तीन दिन कठिन परीक्षा के थे। एक ओर कुवर साहव की प्रभावशालिनी वाते, दूसरी ओर किसानो की हाय-हाय। परन्तु विचार-सागर मे तीन दिन तक निमग्न रहने के पश्चात् उन्हे धरती का सहारा मिल गया। उनकी आत्मा ने कहा—यह पहली परीक्षा है। यदि इसमे अनुत्तीर्ण रहे तो फिर आत्मिक दुर्वलता ही हाथ रह जायगी। निदान निश्चय हो गया कि मैं अपने लाभ के लिए इतने गरीवो को हानि न पहुँचाऊँगा।

दस बजे दिन का समय था। न्यायालय के सामने मेला सा लगा हुआ था। जहाँ तहाँ श्यामवस्त्राच्छादित देवताओ की पूजा हो रही थी। चाँदपार के किसान झुड के झुड एक पेड के नीचे आकर बैठे। उनके कुछ दूर पर कुँवर साहब के मुख्तार आम, सिपाहियो और गवाहो की भीड थी। ये लोग अत्यन्त विनोद मे थे। जिस प्रकार मछलियाँ पानी मे पहुँच कर कल्लोले करती है, उसी भाँति ये लोग भी आनन्द मे चूर थे। कोई पान खा रहा था, कोई हलवाई की दूकान से पूरियो के पत्तल लिए चला आता था। उधर बेचारे किसान पेड के नीचे चुपचाप उदास बैठे थे कि आज न जाने क्या होगा, कौन आफत आयेगी, भगवान का भरोसा है। मुकदमे की पेशी हुई। कुँवर साहब की ओर के गवाह गवाही देने लगे कि ये असामी बडे सरकश है। जब लगान माँगा जाता है तो लडाई-झगडे पर तैयार हो जाते है। अबकी इन्होने एक कौडी भी नही दी।

कादिर खाँ ने रोकर अपने सिर की चोट दिखाई। सब के पीछे पडित दुर्गानाथ की पुकार हुई।

उन्ही के बयान पर निपटारा था। वकील साहब ने उन्हे खूब तोते की भाँति पढा रक्खा था, किन्तु उनके मुख से पहला वाक्य निकला था कि मजिस्ट्रेट ने उनकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। वकील साहब बगले झाँकने लगे। मुख्तार आम ने उनकी ओर घूर कर देखा। अहलमद, पेशकार आदि सब के सब उनकी ओर आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे।

न्यायाधीश ने तीव्र स्वर मे कहा—तुम जानते हो कि मजिस्ट्रेट के सामने खडे हो?

दुर्गानाथ (दृढतापूर्वक)—जी हाँ, खूब जानता हूँ।

न्याया०—तुम्हारे ऊपर असत्य भाषण का अभियोग लगाया जा सकताहै।

दुर्गानाथ—अवश्य, यदि मेरा कथन झूठा हो।

वकील ने कहा—जान पडता है किसानो के दूध घी और भेट आदि ने यह काया-पलट कर दी है। और न्यायाधीश की ओर सार्थक दृष्टि से देखा।

दुर्गानाथ—आपको इन वस्तुओ का अधिक तजरुबा होगा। मुझे तो अपनी रूखी रोटियाँ ही अधिक प्यारी है।

न्यायाधीश—तो इन असामियो ने सब रुपया बेबाक कर दिया है ?

दुर्गानाथ—जी हाँ, इनके जिम्मे लगान की एक कौडी भी बाकी नही है।

न्यायालय—रसीदे क्यो नही दी ?

दुर्गानाथ—मालिक की आज्ञा।

(६)

मजिस्ट्रेट ने नालिशे डिसमिस कर दी। कुँवर साहब को ज्यो ही इस पराजय की खबर मिली, उनके कोप की मात्रा सीमा से बाहर हो गई।

उन्होने दुर्गानाथ को सैकडो कुवाक्य कहे—नमकहराम, विश्वासघाती, दुष्ट। ओह, मैने उसका कितना आदर किया, किंतु कुत्ते की पूँछ कही सीधी हो सकती है। अन्त मे विश्वासघात कर ही गया। यह अच्छा हुआ कि पडित दुर्गानाथ मजिस्ट्रेट का फैसला सुनते ही मुख्तार आम को कुँजियाँ और कागजपत्र सुपुर्द कर चलते हुए। नही तो उन्हे इस कार्य के फल मे कुछ दिन हल्दी और गुड पीने की आवश्यकता पडती।

कुँवर साहब का लेन-देन विशेष अधिक था। चाँदपार बहुत बडा इलाका था। वहाँ के असामियो पर कई हजार रुपये बाकी थे। उन्हे विश्वास हो गया कि अब रुपया डूब जायगा। वसूल होने की कोई आशा नही। इस पडित ने असामियो को बिलकुल बिगाड दिया। अब उन्हे मेरा क्या डर। अपने कारिन्दो और मन्त्रियो से सम्मति ली। उन्होने भी

यही कहा--अब वसूल होने की कोई सूरत नही। कागज़ात न्यायालय मे पेश किये जायँ तो इनकम टैक्स लग जायगा किन्तु रुपया वसूल होना कठिन है। उज़रदारियाँ होगी। कही हिसाब मे कोई भूल निकल आई तो रही सही साख भी जाती रहेगी और दूसरे इलाको का रुपया भी मारा जायगा।

दूसरे दिन कुँवर साहब पूजापाठ से निश्चिन्त हो अपने चौपाल मे बैठे, तो क्या देखते हैं कि चाँदपार के असामी झुड के झुड चले आ रहे हैं। उन्हे यह देख कर भय हुआ कि कही ये सब कुछ उपद्रव न करे, किन्तु किसी के हाथ मे एक छडी तक न थी। मलूका आगे आगे आता था। उसने दूर ही से झुक कर वन्दना की। ठाकुर साहब को ऐसा आश्चर्य हुआ, मानो वे कोई स्वप्न देख रहे हो।

(७)

मलूका ने सामने आकर विनयपूर्वक कहा—सरकार, हम लोगो से जो कुछ भूल चूक हुई उसे क्षमा किया जाय। हम लोग सब हजूर के चाकर हैं, सरकार ने हमको पाला-पोसा है। अब भी हमारे ऊपर यही निगाह रहे।

कुँवर साहब का उत्साह बढा। समझे कि पडित के चले जाने से इन सबो के होश ठिकाने हुए है। अब किसका सहारा लेगे? उसी खुर्राट ने इन सबो को बहका दिया था। कडककर बोले—वे तुम्हारे सहायक पडित कहाँ गये? वे आ जाते तो जरा उनकी खबर ली जाती।

यह सुन कर मलूका की आँखो मे आँसू भर आये। वह बोला—सरकार उनको कुछ न कहे। वे आदमी नही, देवता थे। जवानी की सौगन्ध है, जो उन्होने आपकी कोई निन्दा की हो। वे बेचारे तो हम लोगो को बार बार समझाते थे कि देखो, मालिक से बिगाड करना अच्छी बात नही। हमसे एक लोटा पानी के रवादार नही हुए। चलते चलते हम लोगो से कह गये

कि मालिक का जो कुछ तुम्हारे जिम्मे निकले, चुका देना। आप हमारे मालिक है। हमने आपका बहुत खाया पिया है। अब हमारी यही बिनती सरकार से है कि हमारा हिसाब किताब देख कर जो कुछ हमारे ऊपर निकले, बताया जाय। हम एक एक कौडी चुका देगे, तब पानी पीयेगे।

कुँवर साहब सन्न हो गये। इन्ही रुपयो के लिए कई बार खेत कटवाने पडे थे। कितनी वार घरो मे आग लगवाई। अनेक बार मारपीट की। कैसे कैसे दड दिये। और आज ये सब आप से आप सारा हिसाब किताब साफ करने आये है। यह क्या जादू है।

मुख्तार आम साहब ने कागजात खोले और असामियो ने अपनी अपनी पोटलियाँ।

जिसके ज़िम्मे जितना निकला, बे-कान-पूछ हिलाये उसने सामने रख दिया। देखते-देखते सामने रुपयो का ढेर लग गया। छ हज़ार रुपया वात की वात मे वसूल हो गया। किसी के जिम्मे कुछ बाकी न रहा। यह सत्यता और न्याय की विजय थी। कठोरता और निर्दयता से जो काम कभी न हुआ वह धर्म और न्याय ने पूरा कर दिखाया।

जब से ये लोग मुकद्दमा जीत कर आये तभी से उनको रुपया चुकाने की धुन सवार थी। पडितजी को वे यथार्थ मे देवता समझते थे। रुपया चुका देने के लिए उनकी विशेष आज्ञा थी। किसी ने अन्न बेचा, किसी ने बेल, किसी ने गहने बन्धक रक्खे। यह सब कुछ सहन किया, परन्तु पडितजी की बात न टाली। कुँवर साहब के मन मे पडितजी के प्रति जो बुरे विचार थे वे सब मिट गये। उन्होने सदा से कठोरता से काम लेना सीखा था। उन्ही नियमो पर वे चलते थे। न्याय तथा सत्यता पर उनका विश्वास न था। किन्तु आज उन्हे प्रत्यक्ष देख पडा कि सत्यता और कोमलता मे बहुत बडी शक्ति है।

ये असामी मेरे हाथ से निकल गए थे। मैं उनका क्या बिगाड सकता था ? अवश्य वह पडित सच्चा और धर्मात्मा पुरुष था। उसमे दूरदर्शिता न हो, कालज्ञान न हो, किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि वह नि.स्पृह और सच्चा पुरुष था।

(८)

कैसी ही अच्छी वस्तु क्यो न हो, जब तक हमको उसकी आवश्यकता नही होती तब तक हमारी दृष्टि मे उसका गौरव नही होता। हरी दूब भी किसी समय अशर्फ़ियो के मोल बिक जाती है। कुँवर साहब का काम एक नि स्पृह मनुष्य के बिना रुक नही सकता था। अतएव पडितजी के इस सर्वोत्तम कार्य्य की प्रशसा किसी कवि की कविता से अधिक न हुई।

चाँदपार के असामियो ने तो अपने मालिक को कभी किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाया, किन्तु अन्य इलाको वाले असामी उसी पुराने ही ढग से चलते थे। उन इलाको मे रगड-झगड सदैव मची रहती थी। अदालत, मारपीट, डॉट-डपट सदा लगी रहती थी। किन्तु ये सब तो जमीदारी के शृगार है। बिना इन सब बातो के जमीदारी कैसी ? क्या दिन भर बैठे बैठे वे मक्खियाँ मारे ?

कुँवर साहब इसी प्रकार पुराने ढग से अपना प्रबन्ध सँभालते जाते है। कई वर्ष व्यतीत हो गए। कुँवर साहब का कारोबार दिनोदिन चमकता ही गया। यद्यपि उन्होने ५ लडकियो के विवाह बडी धूमधाम के साथ किए, परन्तु तिस पर भी उनकी बढती मे किसी प्रकार की कमी न हुई। हाँ शारीरिक शक्तियाँ अवश्य कुछ-कुछ ढीली पडती गई। बडी भारी चिन्ता यही थी कि इस बडी सम्पत्ति और ऐश्वर्य को भोगने वाला कोई उत्पन्न न हुआ, भाजे, भतीजे और नवासे इस रियासत पर दाँत लगाए हुए थे।

कुँवर साहब का मन अब इन सासारिक झगडो से फिरता जाता था। आखिर यह रोना-धोना किस लिए ? अब उनके जीवन-नियम मे एक परिवर्त्तन हुआ। द्वार पर कभी कभी साधु-सन्त धनी रमाये हुए देख पडते। स्वय भगवद्गीता और विष्णुपुराण पढते। पारलौकिक चिन्ता अब नित्य रहने लगी। परमात्मा की कृपा और साधु-सन्तो के आशीर्वाद से बुढापे मे उनके एक लडका पैदा हुआ। जीवन की आशाये सफल हुई। दुर्भाग्यवश पुत्र के जन्म ही से कुँवर साहब शारीरिक व्याधियो से ग्रस्त रहने लगे। सदा वैद्यो और डाक्टरो का ताँता लगा रहता था। लेकिन दवाओ का उलटा प्रभाव पडा।

ज्यो त्यो कर के उन्होने ढाई वर्ष बिताये। अन्त मे उनकी शक्तियो ने जवाब दे दिया। उन्हे मालूम हो गया कि अब ससार से नाता टूट जायगा। अब चिन्ता ने और धर दबाया—यह सारा माल असबाव, इतनी बडी सम्पत्ति किस पर छोड जाऊँ ? मन की इच्छाएँ मन ही मे रह गई। लडके का विवाह भी न देख सका, उसकी तोतली बाते सुनने का भी सौभाग्य न हुआ। हाय, अब इस कलेजे के टुकडे को किसे सौपूँ, जो इसे अपना पुत्र समझे। लडके की माँ स्त्री जाति, न कुछ जाने न समझे। उससे कारबार सँभलना कठिन है। मुख्तार आम, गुमाश्ते, कारिन्दे कितने है परन्तु सब के सब स्वार्थी, विश्वासघाती। एक भी ऐसा पुरुष नही जिस पर मेरा विश्वास जमे। कोर्ट आफ वार्ड्स के सुपुर्द करूँ तो वहाँ भी ये ही सब आपत्तियाँ। कोई इधर दबायेगा कोई उधर। अनाथ बालक को कौन पूछेगा ? हाय, मैने आदमी नही पहिचाना। मुझे हीरा मिल गया था, मैने उसे ठिकरा समझा! कैसा सच्चा, कैसा वीर, दृढप्रतिज्ञ पुरुष था। यदि वह कही मिल जावे तो इस अनाथ बालक के दिन फिर जायँ। उसके हृदय मे करुणा है, दया है। वह एक अनाथ बालक पर तरस खायगा। हा! क्या मुझे उसके दर्शन मिलेगे! मै उस देवता के चरण धोकर

माथे पर चढाता। आँसुओ से उनके चरण धोता। वही यदि हाथ लगाये तो यह मेरी डूबती हुई नाव पार लगे।

(९)

ठाकुर साहब की दशा दिन पर दिन बिगड़ती गई। अब अन्तकाल आ पहुँचा।

उन्हे पडित दुर्गानाथ की रट लगी हुई थी। बच्चे का मुँह देखते और कलेजे से एक आह निकल जाती। बार बार पछताते और हाथ मलते। हाय! उस देवता को कहाँ पाऊँ। जो कोई उसके दर्शन करा दे, आधी जायदाद उसके न्योछावर कर दूँ। प्यारे पडित, मेरे अपराध क्षमा करो। मै अन्धा था, अज्ञानी था। अब मेरी बाँह पकडो। मुझे डूबने से बचाओ। इस अनाथ बालक पर तरस खाओ। हितार्थी और सम्बन्धियो का समूह सामने खडा था। कुँवर साहब ने उसकी ओर अधखुली आँखो से देखा। सच्चा हितैषी कही देख न पडा। सबके चेहरे पर स्वार्थ की झलक थी। निराशा से आँखे मूँद ली। उनकी स्त्री फूट फूट कर रो रही थी। निदान उसे लज्जा त्यागनी पडी। वह रोती हुई पास जा कर बोली—प्राणनाथ, मुझे और इस अनाथ बालक को किस पर छोडे जाते हो? कुँवर साहब ने धीरे से कहा—पडित दुर्गानाथ पर। वे जल्द आवेगे। उनसे कह देना कि मैने सब कुछ उनकी भेट कर दिया। यह मेरी अन्तिम वसीयत है।

आकाश-गंगा

बाबू रामदास गौड़, एम० एस० सी०,

बाबू रामदास गौड का जन्म मार्गशीर्ष अमावस्या को स० १९३८ में जौनपुर मे हुआ था। कुछ वर्ष हुए इनकी मृत्यु हो गई। आपकी प्रारभिक शिक्षा उर्दू फारसी मे हुई थी पर घर में रामचरितमानस का पाठ होता था जिससे बाल्यावस्था से रामभक्ति में ये लवलीन रहे। कालेज के अध्ययन की समाप्ति पर सेंट्रल हिन्दू कालेज काशी मे ये रसायन के अध्यापक नियुक्त हुए। स० १९७५ मे ये काशी विश्वविद्यालय में रसायन के प्रो० हो गए। स० १९७७ में विश्वविद्यालय छोड़ कर असहयोग आन्दोलन में ये सम्मिलित हुए। कुछ समय तक काशी विद्यापीठ में अध्यापन कार्य करते रहे हैं। राजनीतिक सघर्ष में भाग लेने से ये जेल भी गए हैं।

गौड़ जी ने विज्ञान का बहुत वरसो तक सम्पादन किया है। उर्दू, फारसी अग्रेजी और सस्कृत के ये मर्मज्ञ थे। बँगला, गुजराती, मराठी एव प्राकृत से भी आपका परिचय था। व्याख्यान देने में ये निपुण थे। इतिहास, दर्शन और साहित्य का इन्हें व्यापक ज्ञान था। 'वैज्ञानिक अद्वैतवाद' और 'रामचरितमानस' की भूमिका आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वैज्ञानिक विषयो पर आपके निबध बडे ही सुबोध और सारगर्भित है।

अद्भुत दृश्य

तारो भरी रात के स्वच्छ नीले आकाश की शोभा किसने नही देखी है। यह नित्य का एक ही प्रकार का मनमोहक दृश्य जगत् के जन्म

मे आज तक मनुष्य देखता आया है, परन्तु उसका जी उससे कभी नही ऊबा। इस दृश्य को देख देख कर परम मूर्ख मे लेकर उद्भट विद्वान् तक आश्चर्य-चकित होते रहे है। ज्योतिषी अपनी दूर-गामिनी दृष्टि से बहुत कुछ थाह लगाने की कोशिश करते आये। वर्तमान युग मे बडे-से-बडे और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म यत्रो से काम ले कर भी उन्हे एक ही बात मालूम हुई कि विश्व अनादि और अनन्त है, उसकी सब बातो को जानना हमारी शक्ति के बाहर है। इसमे शक नही कि उन्होने यत्रो के सहारे अधिकाधिक जाना, पर साथ ही साथ उनके अज्ञान की परिधि उनकी जानकारी की अपेक्षा अधिकाधिक विस्तीर्ण होती गई। उन्होने विशेष रूप से यह जान पाया कि हमने जो कुछ जाना है, वह हमारी अनत बेजानी हुई बातो के सामने शून्य की बराबरी भी नही रखता।

इसी अनत आकाश-मडल के दृश्यो मे से सब से अद्भुत और विस्मय-कारी दृश्य 'आकाश-गगा' है। इसे बहुत से लोग 'डहर' कहते है। अग्रेजी मे इसका नाम क्षीरायण (मिल्की वे) है। देखने मे यह गिरा हुआ दूध-सा लगता है, जिसमे असख्य तारे प्राचुर्य्य से पडे हुए है और धारा के किनारे किनारे छिटके है। धारा से तारे जितनी ही दूर होते है, उतने ही विरल दिखाई देते है। यह आकाश-गगा टेढी-मेढी हो कर बही है। इसका प्रवाह उत्तर की ओर से लेकर दक्खिन की ओर गया है। परतु आकाश-गगा देखने मे दो धाराओ मे गई हुई जान पडती है। एक तो रात्रि के प्रथम प्रहर मे और दूसरी अतिम प्रहर मे। दूसरी धारा ईशान से नैऋत्य कोण की ओर जाती है। उसकी दिशा पहली से नही मिलती। परतु ज्योतिषियो ने इसका पूरा विचार करके निर्णय किया है कि वास्तव मे आकाश-गगा एक ही है, दक्षिण उत्तर होकर आकाश के दोनो कटाह मे प्राय. गोलाकार घूम गई है और पृथ्वी के घूमते रहने से उसका एक खड एक बार और दूसरा खड दूसरी बार दिखाई पडता है। इन्ही

खडो मे आकाश-मडल मे हमको दिखाई देने वाले अधिकाश तारे स्थित है।

अनत दूरी

देखने मे तो अनत तारे परस्पर सटे-से जान पडते है, परतु यह दृष्टि-भ्रम है। आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिर्विदो ने पता लगाया है कि इनमे एक दूसरे की दूरी अरबो मीलो की हो सकती है, और हमारी तो इनसे इतने मीलो की दूरी है कि उतनी सख्या लिखने मे भी नही आ सकती। जिन तारो की दूरी ऐसी सख्यातीत है, फिर शब्दो मे उसे व्यक्त करने का भी कुछ उपाय है? हॉ, वैज्ञानिको ने उसके लिए एक युक्ति निकाली है। भौतिक विज्ञान वालो ने रश्मि-मापक यत्र के द्वारा यह पता लगाया है कि प्रकाश का वेग एक सेकड मे एक लाख छियासी हजार मील है, अर्थात् सूर्य से जो प्रकाश हमारे पास लग-भग सवा नौ करोड मील चल कर आता है, वह प्रति सेकड १ लाख ८६ हजार मील के वेग से चल कर आता है। इस यात्रा मे इसीलिए उसे आठ मिनटो से कुछ अधिक लगते है। अब हम सूर्य्य की दूरी सवा नौ करोड मील न कह कर सवा आठ प्रकाश मिनट कहे, तो भी कुछ समझ मे आने का आधार मिल जाता है। कहने मे लाघव भी होता है। अब मान लीजिए कि किसी तारे की दूरी ऐसी हो कि उससे प्रकाश के आने मे आठ मिनटो के बदले आठ घटे लगते हो या आठ दिन लगते हो या आठ महीने लगते हो या आठ वर्ष ही लगते हो, तो हम सहज मे उनकी दूरी के परिमाण को प्रकाश के आठ घटो, दिनो, मासो या वर्षो मे व्यक्त कर सकते है। आठ वर्षो मे जिस तारे मे प्रकाश आता है, उसकी दूरी हमसे पौने पॉच नील मीलो के लगभग होगी। परतु जहाँ से आठ हजार वर्षो मे प्रकाश आता होगा, वहॉ की दूरी हमसे पौने सैतालीस पद्म मीलो के लगभग होगी। परतु तारे तो इतनी इतनी दूरी

पर है कि उनसे प्रकाश के आने मे लाखो बरसो का समय लग सकता है। ऐसी अवस्था मे न तो मीलो की गिनती मे उसे ला सकते है और न कुछ समझ मे ही आ सकता है।

अनत देश, अनंत काल, अनत विश्व

जिस आकाश के भीतर अनत दूरी है, वह अनत देश है। जिस विश्व मे नित्य ब्रह्माडो की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय की कहानी दुहराई जाती है, उसके महाप्रलय या महोत्पत्ति का काल क्या है, यह अचित्य है, अनत है। फिर विश्व भी एक दो हो, तो कुछ कहा जाय। विश्व भी तो अनत है। उनका आदि न जानने से हम उसे अनादि कह सकते है। फिर मध्य का निर्णय किस परिमाण से हो ? अर्थात् यह विश्व-विराट् अवश्य ही देश और काल से अतीत और अपरिमित है। अब विश्वो और ब्रह्माडो की पुराण-वत् नई कथा सुनिए।

आकाश-गगा के तारे इतनी दूरी पर है कि उनकी दूरी प्रकाश-वर्षो मे भी गिनना कठिन है। उनकी आपस की दूरी भी ऐसी ही भयानक है। जब सटे हुए तारो की यह दशा है, तब उन तारो की चर्चा ही क्या है, जो आकाश-गगा के बाहर दूर दूर पर स्थित है। आधुनिक ज्योतिर्विद् कहते है कि आकाश-गगा एक विश्व है, जिसमे असख्य ब्रह्माड है, और हर एक टिमटिमाता तारा अपने अपने ब्रह्माड का नायक सूर्य्य है। हम जो छोटे छोटे तारे देखते है वे वास्तव मे बडे सूर्य्य है जिनमे से अनेकानेक इतने बडे है कि जिनके सामने हमारे सूर्य्य का महापिड एक रेणु के बराबर भी नही ठहरता। हम इस तरह असख्य ब्रह्माडो के नायको के दर्शन करते है। हमारे ब्रह्माड की स्थिति इसी आकाश-गगा के मध्य आकाश मे है।

देखने मे हमारा सूर्य्य लुब्धक है, अगस्त्य, अग्नि आदि अनेक तारे आकाश-गगा से दूर जान पडते है, परतु कोई आश्चर्य की बात न होगी,

यदि ये सभी स्वतंत्र तारे आकाश-गगा के ही अतर्गत हो, परतु हमारी स्थिति के कारण ही यह आकाश-गगा से पृथक् से लगते है। हमारा ब्रह्माड तो आकाश-गगा के मध्य मे ही कही अनुमित होता है।

नीहारिकाएँ—विश्वदर्शन

बिल्कुल स्वच्छ नीले आकाश मे जैसे दूध-सी फैली हुई सफेदी आकाश-गगा मे है, वैसे ही दूध से धब्बे कही कही और दिखाई देते है। दूरबीन से देखने पर तो इस अनंत आकाश मे ऐसे हजारो लाखो दूधिया तारा-मडल मिलते है, जिनका आकार कुडली-सा फिरा हुआ लगता है। ज्योतिपियो ने इनका नाम "नीहारिका" रक्खा है। ये नीहारिकाएँ अनत और कल्पनातीत दूरी पर है। कहा जाता है कि हमारी आकाश-गगा भी ऐसी ही एक नीहारिका है। नीहारिकाएँ कुडली के आकार की होती है। यह आकाश-गगा कुडली के आकार की है। हमारा ब्रह्माड किसी ऐसे देश मे है, जहाँ से कुडली के दोनो ओर का भाग घूमा हुआ है, इसीलिए हमे दो आकाश-गगाएँ दिखाई देती है। जिन नीहारिकाओ को हम आकाश-गगा से दूर, बहुत छोटे आकार मे देखते है, बहुत सभव है कि उनका विस्तार और आयतन हमारी आकाश-गगा से भी अधिक हो। वर्तमान ज्योतिर्विदो का अनुमान है कि एक एक नीहारिका एक एक विश्व है, जिसके अतर्गत अनत ब्रह्माड है। दूरवीक्षण यत्र से इस तरह की अनेक नीहारिकाएँ देखने मे आई है, जो एक दूसरी की आड मे छिपी है। अत. दूरबीन के सहारे हम हजारो लाखो विश्वो के दर्शन कर सकते है। परन्तु दूरबीन की शक्ति भी परिमित है। ऐसा अनुमान हो सकता है कि इन विश्वो के सिवा असख्य विश्व होगे! और हर एक मे असख्य ब्रह्माड!! हम आकाश-मडल मे जो इतनी नीहारिकाएँ दूर दूर पर देखते है, वे वास्तव मे आकाश-गगा वाले विश्व के भीतर से, अनत देश के असीम

झरोखो से, अपने विश्व की सीमा के बाहर अनत असीम आकाश-देश में स्थित और विश्वो के दर्शन करते है। इसी से हमे ये थोडे से विश्व थोडी सी नीहारिकाएँ दिखाई देती है । यदि इस विश्व के महामदिर से बाहर निकल कर अपरिच्छिन्न दृष्टि से देखने का साधन उपलब्ध होता, तो हम अनत विश्वो के दर्शन कर सकते, और तब हमारी आकाश-गगा, जो समस्त व्योम-मडल को घेरे हुए जान पडती है, एक मेघ-बिंदु के समान दिखाई पडती। और यदि ऐसा सभव होता कि हम दो नीहारिकाओ या विश्वो के अनत अतराल-देश मे अपने को स्थित पाते, तो उस समय आकाश का दृश्य हमारे लिए नितात भिन्न होता। आकाश मे एक भी आकाश-गगा न दिखाई देती। जो नक्षत्र जिस प्रकार आज हम देखते है, वह तो शायद कही देख न पडते या असख्य नीहारिकाओ के नीहार मे छिप जाते । साथ ही अनेक नये जाज्वल्यमान नक्षत्र और तारे नये-नये स्थानो मे दिखाई पडते । उनमे हमे अपना सूर्य्य और चन्द्रमा ढूढे न मिलते। ,

ऐसी अद्‌भुत अनतता, विचित्र अनादिता और विस्मयकारी अमध्यता जिस विराट् पुरुप के अदर है, उसके "पादोऽस्य विश्वा भूतानि"—एक चौथाई मे ही सारे विश्वो की सृष्टि है!!!

उपसंहार

हमारी आकाश-गगा भी ऐसी ही एक नीहारिका है, जिसमे हमारे जैसे असख्य ब्रह्माड है। अनेक बन चुके है, अनेक बन रहे, अनेक भविष्य, के गर्भ मे निहित है। हमारे ब्रह्माड मे भी अनेक ग्रह है, जो हमारी पृथ्वी सरीखे बडे-बडे पिड है। कई ससार-रचना की तैयारी मे है, कई के ससार ससरण कर रहे है, कई के ससार अपनी पूर्णायु भोग कर अपनी यात्रा की सीमा की ओर चल रहे हे और कई उसी सीमा पर पहुँच कर यात्रा पूरी

कर चुके हैं। हमारी धरती ने अभी अपना जीवन आरभ किया है। अनेक वैज्ञानिको के मत से इसके जीवनमय जीवन के कुछ ऊपर दो करोड वरस हुए होगे। हिदुओ का भी ऐसा ही मत है। वे कहते है कि श्वेत वाराह कल्प का अट्ठाईसवाँ कलियुग है, जिसके केवल पाँच हजार इकतीस वरस वीते हैं। इस हिसाव से भी दो करोड से कुछ ऊपर वरस वीत चुके है।

हमारी गणना केवल यही नही मेल खाती। सभी जगह हमारी पौराणिक सख्याएँ वैज्ञानिक सख्याओ से मेल खाती हैं। इतना ही नही, विश्व की सृष्टि के सिद्धात भी मिलते है। कथाओ पर विचार करने से अद्भुत मेल मिलता है। क्षीर-सागर, शेष-शय्या, महालक्ष्मी, नारायण का शयन, कमल का उद्भव, ब्रह्मा की उत्पत्ति, मधुकैटभ का युद्ध, मेदिनी-निर्माण, मगल की उत्पत्ति इत्यादि कथाओ का एक वहुत ही विचित्र समन्वय होता है।

मित्रता

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य शुक्ल जी का जन्म सं० १९४१ में वस्ती जिले के अगोना गाँव मे हुआ था और निधन सं० १९९८ में हुआ। बाल्यकाल में संस्कृत का ज्ञान आपने प्राप्त किया और अँगरेजी शिक्षा इन्टरमीडियेट तक प्राप्त की थी तभी से आपकी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ सजग रही हैं। सन् १९०६ में ये 'हिन्दी शब्दसागर' के सहकारी सम्पादक नियुक्त हुए और नौ वर्ष तक नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक भी रहे हैं। काशी विश्वविद्यालय में उच्च कक्षाओ के लिए हिन्दी स्वीकृत होने पर ये हिन्दी विभाग में अध्यापक हो गए। जीवन के पिछले कई वर्षो तक उक्त विभाग के अध्यक्ष पद को भी इन्होने प्रतिष्ठित किया है। शुक्ल जी श्रेष्ठ कवि, आलोचक एवं निबंध लेखक थे। उनका कार्य हिन्दी साहित्य के विविध क्षेत्रो में आचार्यवत् हुआ है। मननशील तथा गंभीर प्रकृत के कारण विविध मनोविकारों पर, सूक्ष्म विश्लेषणात्मक पद्धति पर इन्होंने विचारात्मक निबंध लिखे हैं। इनके साहित्यिक निबंध भी बड़े विद्वत्तापूर्ण हैं। सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास तथा मलिक मुहम्मद जायसी पर लिखी हुई इनकी आलोचना बडी सतर्क, मनोवैज्ञानिक और पाडित्यपूर्ण है। बुद्ध-चरित काव्य, हिन्दी साहित्य का इतिहास, हिन्दी काव्य में रहस्यवाद, चिंतामणि आदि इनकी मुख्य कृतियाँ हैं।

शुक्लजी ने भाषा को अत्यधिक शुद्ध और परिष्कृत किया है। उनकी

संस्कृत शैली में ठेठपन या ग्रामीणता के लिए कही अवकाश नहीं है। उनका चिंतन दार्शनिक उच्च भूमि से होता है। विचार तार्किक शैली पर शृंखला बद्ध मिलते है। क्लिष्टता का कारण शब्दयोजना न हो कर विचारों की गम्भीरता और सघनता है। व्यर्थ के अनावश्यक शब्द उनके निबध मे कही नहीं मिलेंगे। भाषा शैली में उनका व्यक्तित्व पूर्णतया प्रतिबिम्बित है ।

भाषा-भाव के उत्कर्ष के साथ नये शब्दो की सृष्टि भी शुक्लजी ने की है। इस समय तक कई साहित्य के इतिहास प्रगट हो चुके है। किन्तु शुक्लजी का हिन्दी साहित्य का इतिहास अद्वितीय है । शुक्लजी से पूर्व आलोचना का संकुचित एकागी दृष्टिकोण था। उसकी स्थिति दयनीय थी। शुक्लजी ने मानसिक और कलापक्ष की एकता करके आलोचना को एक मनोवैज्ञानिक शैली प्रदान की है जिसमें भारतीय और पाश्चात्य पद्धति का सुन्दर समीकरण है।

जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकल कर बाहरी ससार मे अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने मे पडती है । यदि उसकी स्थिति बिलकुल एकात और निराली नही रहती तो उसकी जान-पहचान के लोग धडाधड बढते जाते है और थोडे ही दिनो मे कुछ लोगो से उसका हेल-मेल हो जाता है । यही हेल-मेल बढते-बढते मित्रता के रूप मे परिणत हो जाता है। मित्रो के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है, क्योकि सगत का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बडा भारी पडता है। हम लोग ऐसे समय मे समाज मे प्रवेश करके अपना कार्य आरंभ करते है जब कि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का सस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है, हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है, अपने मनोवेगो की शक्ति और अपनी प्रकृति की कोमलता का पता हमी को

नही रहता। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्त्ति के समान रहते है जिसे जो जिस रूप का चाहे, उस रूप का करे—चाहे राक्षस बनावे चाहे देवता। ऐसे लोगो का साथ करना हमारे लिए बुरा है जो हमसे अधिक दृढ सकल्प के है, क्योकि हमे उनकी हर एक बात बिना विरोध के मान लेनी पड़ती है। पर ऐसे लोगो का साथ करना और भी बुरा है जो हमारी ही बात को ऊपर रखते है, क्योकि ऐसी दशा मे न तो हमारे ऊपर कोई दाब रहती है और न हमारे लिए कोई सहारा रहता है। दोनो अवस्थाओ मे जिस बात का भय रहता है, उसका पता युवा पुरुषो को प्राय बहुत कम रहता है। यदि विवेक से काम लिया जाय तो यह भय नही रहता, पर युवा पुरुष प्राय विवेक से कम काम लेते है। कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक घोडा लेते है तो उसके गुण-दोष को कितना परख कर लेते है, पर किसी को मित्र बनाने मे उसके पूर्व आचरण और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार और अनुसधान नही करते। वे उसमे सब बाते अच्छी ही अच्छी मान कर उस पर अपना पूरा विश्वास जमा देते है। हँसमुख चेहरा, बातचीत का ढब, थोडी चतुराई वा साहस—ये ही दो चार बाते किसी मे देख कर लोग चटपट उसे अपना बना लेते है। हम लोग यह नही सोचते कि मैत्री का उद्देश्य क्या है, तथा जीवन के व्यवहार मे उसका कुछ मूल्य भी है। यह बात हमे नही सूझती कि यह एक ऐसा साधन है जिससे आत्मशिक्षा का कार्य बहुत सुगम हो जाता है। एक प्राचीन विद्वान् का वचन है—"विश्वासपात्र मित्र से बडी भारी रक्षा रहती है। जिसे ऐसा मित्र मिल जाय उसे समझना चाहिए कि खजाना मिल गया।" विश्वासपात्र मित्र जीवन का एक औषध है। हमे अपने मित्रो से यह आशा रखनी चाहिए कि वे उत्तम सकल्पो मे हमे दृढ करेगे, दोषो और त्रुटियो से हमे बचावेगे, हमारे सत्य, पवित्रता और मर्यादा के प्रेम को पुष्ट करेगे, जब हम कुमार्ग पर पैर रक्खेगे, तब वे हमे सचेत करेगे, जब हम

हतोत्साह होंगे तब हमें उत्साहित करेंगे, साराश यह है कि वे हमें उत्तमता-पूर्वक जीवन-निर्वाह करने मे हर तरह से सहायता देंगे । सच्ची मित्रता मे उत्तम से उत्तम वैद्य की सी निपुणता और परख होती है। अच्छी से अच्छी माता का सा धैर्य और कोमलता होती है। ऐसी ही मित्रता करने का प्रयत्न प्रत्येक युवा पुरुष को करना चाहिए।

छात्रावस्था मे तो मित्रता की धुन सवार रहती है। मित्रता हृदय से उमडी पडती है। पीछे के जो स्नेहबधन होते है, उनमे न तो उतनी उमग रहती है और न उतनी खिन्नता। बालमैत्री मे जो मग्न करने वाला आनद होता है, जो हृदय को बेधने वाली ईर्ष्या और खिन्नता होती है, वह और कहाँ ? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है, कैसा अपार विश्वास होता है ! हृदय के कैसे कैसे उद्गार निकलते है ! वर्त्तमान कैसा आनदमय दिखाई पडता है और भविष्य के सबध मे कैसी लुभाने वाली कल्पनाएँ मन मे रहती है ! कैसा बिगाड होता है और कैसी आर्द्रता के साथ मेल होता है ! कैसी क्षोभ से भरी बाते होती है और कैसी आवेगपूर्ण लिखा-पढी होती है ! कितनी जल्दी बाते लगती है और कितनी जल्दी मानना-मनाना होता है ! 'सहपाठी की मित्रता' इस उक्ति मे हृदय के कितने भारी उथुल-पुथल का भाव भरा हुआ है ! किंतु जिस प्रकार युवा पुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता से दृढ, शात और गभीर होती है, उसी प्रकार हमारी युवावस्था के मित्र बाल्यावस्था के मित्रो से कई बातो मे भिन्न होते है। मै समझता हूँ कि मित्र चाहते हुए बहुत से लोग मित्र के आदर्श की कल्पना मन मे करते होंगे, पर इस कल्पित आदर्श से तो हमारा काम जीवन की झझटो मे चलता नही। सुदर प्रतिमा, मनभावनी चाल और स्वच्छद प्रकृति—ये ही दो चार बाते देख कर मित्रता की जाती है, पर जीवन-सग्राम मे साथ देने वाले मित्रो मे इससे कुछ अधिक बाते चाहिएँ। मित्र केवल उसे नही कहते जिसके गुणो की तो हम प्रशसा

करे, पर जिससे हम स्नेह न कर सके, जिससे अपने छोटे-मोटे काम तो हम निकालते जायँ, पर भीतर ही भीतर घृणा करते रहे । मित्र सच्चे पथप्रदर्शक के समान होना चाहिए जिस पर हम पूरा विश्वास कर सके, भाई के समान होना चाहिए जिसे हम अपना प्रीतिपात्र बना सके। हमारे और हमारे मित्र के बीच सच्ची सहानुभूति होनी चाहिए—ऐसी सहानुभूति जिससे दोनो मित्र एक दूसरे की बराबर खोज-खबर लिया करे, ऐसी सहानुभूति जिससे एक के हानि-लाभ को दूसरा अपना हानि-लाभ समझे। मित्रता के लिए यह आवश्यक नही है कि दो मित्र एक ही प्रकार का कार्य करते हो वा एक ही रुचि के हो। इसी प्रकार प्रकृति और आचरण की समानता भी आवश्यक वा वाछनीय नही है। दो भिन्न प्रकृति के मनुष्यो मे बराबर प्रीति और मित्रता रही है । राम धीर और शात प्रकृति के थे लक्ष्मण उग्र और उद्धत स्वभाव के थे, पर दोनो भाइयो मे अत्यत प्रगाढ स्नेह था। उदार तथा उच्चाशय कर्ण और लोभी दुर्योधन के स्वभावो मे कुछ विशेष समानता न थी, पर उन दोनो की मित्रता खूब निभी। यह कोई बात नही है कि एक ही स्वभाव और रुचि के लोगो ही मे मित्रता हो सकती है। समाज मे विभिन्नता देखकर लोग एक दूसरे की ओर आकर्षित होते है। जो गुण हम मे नही है, हम चाहते है कि कोई ऐसा मित्र मिले जिसमे वह गुण हो । चिंताशील मनुष्य प्रफुल्लचित्त मनुष्य का साथ ढूँढता है, निर्बल बली का, धीर उत्साही का। उच्च आकाक्षावाला चद्रगुप्त युक्ति और उपाय के लिये चाणक्य का मुँह ताकता था । नीतिविशारद अकबर मन बहलाने के लिए बीरबल की ओर देखता था।

मित्र का कर्तव्य इस प्रकार बतलाया गया है—"उच्च और महाकार्यो मे इस प्रकार सहायता देना, मन बढाना और साहस दिलाना कि तुम अपनी निज की सामर्थ्य से बाहर काम कर जाओ।" यह कर्तव्य उसी से पूरा होगा जो दृढ-चित्त और सत्य सकल्प का हो । इससे हमे ऐसे ही

मित्रो की खोज मे रहना चाहिये जिनमे हमसे अधिक आत्मबल हो। हमे उनका पल्ला उसी तरह पकड़ना चाहिए जिस तरह सुग्रीव ने राम का पल्ला पकडा था। मित्र हो तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हो, मृदुल और पुरुषार्थी हो, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हो, जिसमे हम अपने को उनके भरोसे पर छोड सके और यह विश्वास कर सके कि उनसे किसी प्रकार का धोखा न होगा। मित्रता एक नई शक्ति की योजना है। बर्क ने कहा है कि—"आचरण-दृष्टात ही मनुष्यजाति की पाठशाला है, जो कुछ वह उससे सीख सकता है, वह और किसी से नही।"

ससार के अनेक महान् पुरुष मित्रो की बदौलत बडे बडे कार्य करने मे समर्थ हुए है। मित्रो ने उनके हृदय के उच्च भावो को सहारा दिया है। मित्रो ही के दृष्टातो को देख-देखकर उन्होने अपने हृदय को दृढ किया है। अहा! मित्रो ने कितने मनुष्यो के जीवन को साधु और श्रेष्ठ बनाया है। उन्हे मूर्खता और कुमार्ग के गड्ढो से निकालकर सात्त्विकता के पवित्र शिखर पर पहुचाया है। मित्र उन्हे सुन्दर मत्रणा और सहारा देने के लिए सदा उद्यत रहते है, जिनके सुख और सौभाग्य की चिंता वे निरतर करते रहते है। ऐसे भी मित्र होते है जो विवेक को जागरित करना और कर्तव्य-बुद्धि को उत्तेजित करना जानते है। ऐसे भी मित्र होते है जो टूटे जी को जोडना और लडखडाते पावो को ठहराना जानते है। बहुतेरे मित्र है जो ऐसे दृढ आशय और उद्देश्य की स्थापना करते है जिनसे कर्मक्षेत्र मे आप भी श्रेष्ठ बनते है और दूसरो को भी श्रेष्ठ बनाते है। मित्रता जीवन और मरण के मार्ग मे सहारे के लिये है। यह सैर-सपाटे और अच्छे दिनो के लिये भी है तथा सकट और विपत्ति के बुरे दिनो के लिये भी है। यह हँसी दिल्लगी के गुलछरो मे भी साथ देती है और धर्म के मार्ग मे भी। मित्रो को एक दूसरे के जीवनके कर्तव्यो को उन्नत करके उन्हे साहस, बुद्धि और एकता द्वारा चमकाना चाहिये। हमे अपने मित्र से कहना चाहिये—"मित्र!

अपना हाथ वढाओ। यह जीवन और मरण मे हमारा सहारा होगा। तुम्हारे द्वारा मेरी भलाई होगी। पर यह नही कि सारा ऋण मेरे ही ऊपर रहे, तुम्हार भी उपकार होगा, जो कुछ तुम करोगे उससे तुम्हारा भी भला होगा। सत्यशील, न्यायी और पराक्रमी बने रहो, क्योकि यदि तुम चूकोगे तो मै भी चूकूँगा। जहाँ जहाँ तुम जाओगे मैं भी जाऊँगा। तुम्हारी वढती होगी तो मेरी भी वढती होगी। जीवन के सग्राम मे वीरता के साथ लडो क्योकि तुम्हारी ढाल मै लिये हूँ।"

जो वात ऊपर मित्रों के सम्वन्ध मे कही गई है, वही जान पहिचान वालो के सबध मे ठीक है। जो मनुष्य स्वसकार मे लगा हो, उसे अपने मिलने-जुलनेवालो के आचरण पर भी दृष्टि रखनी चाहिए, उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि उनकी वुद्धि और उनका आचरण ठिकाने का है। साधारणत हमे अपने ऊपर ऐसे प्रभावो को न पडने देना चाहिये जिनसे हमारी विवेचना की गति मद हो वा भले-वुरे का विवेक क्षीण हो। जीवन का उद्देश्य क्या है ? क्या वह भविष्य के लिए आयोजन का स्थान नही ? क्या वह तुम्हारे साथ सौपा हुआ ऐसा पदार्थ नही है जिसका लेखा तुम्हें परमात्मा को और अपनी आत्मा को देना होगा ? सोचो तो कि दो, चार, दस जितने गुण तुम्हे दिये गये है, उन्हे तुम्हे देनेवाले को पचास गुने सौगुने करके लौटाना चाहिए, अथवा ज्यो के त्यो विना व्याज वा वृद्धि के। यदि जीवन एक प्रहसन ही है जिसमे तुम गा-वजाकर और हँसी ठट्टा करके समय काटो, तब जो कुछ उसके महत्त्व के विपय मे मैने कहा है, सव व्यर्थ ही है। पर जीवन मे गभीर वाते और विपत्ति के दृश्य भी है। मेरी समझ मे तो महाराणा प्रताप की भाति सकट मे दिन काटना वाजिदअली शाह की भाँति भोग-विलास करने से अच्छा है। मेरी समझ मे शिवाजी के सवारो की तरह चने बाँधकर चलना औरगजेव के सवारो की तरह बक्के और पानदान के साथ चलने से अच्छा है। मै जीवन को न तो दु खमय

और न सुखमय बतलाना चाहता हूँ, वल्कि उसे एक ऐसा अवसर समझता हूँ जो हमे कुछ कर्त्तव्यो के पालन के लिये दिया गया है, जो परलोक के लिए कुछ कमाई करने के लिये दिया गया है। हमारे सामने ऐसे वहुत से लोगो के दृष्टात है जिनके विचार भी महान् थे, कर्म भी महान थे। जैसा कि महात्मा डिमास्थिनीज ने एथसवासियो से कहा था, उसी प्रकार हमे भी अपने मन मे समझना चाहिये कि "यदि हमे महान् पूर्व-पुरुषो की भाँति कर्म करने का अवसर न मिले, तो हमे कम से कम अपने विचार उनकी भाँति रखने चाहिए और उनकी आत्मा के महत्व का अनुकरण करना चाहिए।" अत हमे सदा इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि हम कैसा साथ करते है। दुनिया तो हमारी जैसी सगत होगी, वैसा हमे समझेगी ही, पर हमे अपने कामो मे भी सगत ही के अनुसार सहायता व वाधा पहुँचेगी। उसका चित्त अत्यत दृढ समझना चाहिए जिसकी चित्तवृत्ति पर उन लोगो का कुछ भी प्रभाव न पडे जिनका वरावर साथ रहता है। पर अच्छी तरह समझ रक्खो कि यह कभी हो नही सकता। चाहे तुम्हे जान न पडे, पर उनका प्रभाव तुम पर वरावर हर घडी पडता रहेगा और उसी के अनुसार तुम उन्नत वा अवनत होगे, उत्साहित वा हतोत्साह होगे। एक विद्वान् से पूछा गया—"जीवन मे किस शिक्षा की सवसे अधिक आवश्यकता है ?" उसने उत्तर दिया—"व्यर्थ की वातो को जानकर भी अनजान होना।" यदि हम जान पहचान करने मे वुद्धिमानी से काम न लेगे तो हमे वरावर अनजान वनना पडेगा।

महामति वेकन कहता है "समूह का नाम सगत नही है। जहाँ प्रेम नही है, वहाँ लोगो की आकृतियाँ चित्रवत् है और उनकी वातचीत झाँझ की झनकार है।" पहचान करने मे हमे कुछ स्वार्थ से काम लेना चाहिए। जान-पहचान के लोग ऐसे हो जिनसे हम कुछ लाभ उठा सकते हो, जो हमारे जीवन को उत्तम और आनदमय करने मे कुछ सहायता

दे सकते हो, यद्यपि उतनी नही जितनी गहरे मित्र दे सकते है। मनुष्य का जीवन थोड़ा है, उसमे खोने के लिए समय नही। यदि क, ख और ग हमारे लिए कुछ नही कर सकते, न कोई बुद्धिमानी या विनोद की बातचीत कर सकते है, न कोई अच्छी बात बतला सकते है, न अपनी सहानुभूति द्वारा हमे ढाढस बँधा सकते है, न हमारे आनद मे समिलित हो सकते है, न हमे कर्तव्य का ध्यान दिला सकते है, तो ईश्वर हमे उनसे दूर ही रक्खे। हमे अपने चारो ओर जड-मूर्तियाँ सजाना नही है। आजकल जान-पहचान बढाना कोई बडी बात नही है। कोई भी युवा पुरुष ऐसे अनेक युवा पुरुषो को पा सकता है जो उसके साथ थिएटर देखने जायँगे, नाच-रग मे जायँगे, सैर-सपाटे मे जायँगे, भोजन का निमत्रण स्वीकार करेगे। यदि ऐसे जान-पहचान के लोगो से कुछ हानि न होगी तो लाभ भी न होगा। पर यदि हानि होगी तो बडी भारी होगी। सोचो तो, तुम्हारा जीवन कितना नष्ट होगा, यदि ये जान-पहचान के लोग उन मनचले युवको मे से निकले जिनकी सख्या दुर्भाग्यवश आजकल बहुत बढ रही है, यदि उन शोहदो मे से निकले जो अमीरो की बुराइयो और मूर्खताओ की नकल किया करते है, दिन-रात बनाव-सिगार मे रहा करते है, कुलटा स्त्रियो के फोटो मोल लिया करते है, महफिलो मे 'ओ हो हो' 'वाह 'वाह' किया करते है, गलियो मे ठट्टा मारते है और सिगरेट का धुआँ उडाते चलते है। ऐसे नवयुवको से बढकर शून्य, नि सार ओर शोचनीय जीवन और किसका है? वे अच्छी बातो के सच्चे आनद से कोसो दूर है। उनके लिये न तो ससार मे सुदर और मनोहर उक्तिवाले कवि हुए है और न सुदर आचरण वाले महात्मा हुए है। उनके लिए न तो बडे बडे वीर अद्भुत कर्म्म कर गए है और न बडे बडे ग्रथकार ऐसे विचार छोड गए है जिनसे मनुष्य-जाति के हृदय मे सात्त्विकता की उमगे उठती है। उनके लिए फूल-पत्तियो मे कोई सौन्दर्य्य नही, झरनों

के कलकल मे मधुर सगीत नही, अनत सागर-तरगो मे गभीर रहस्यो का आभास नही, उनके भाग्य मे सच्चे प्रयत्न और पुरुपार्थ का आनद नही, उनके भाग्य मे सच्ची प्रीति का सुख और कोमल हृदय की शाति नही। जिनकी आत्मा अपने इद्रिय-विपयो मे ही लिप्त है, जिनका हृदय नीच आशयो और कुत्सित विचारो से कलुषित है, ऐसे नाशोन्मुख प्राणियो को दिन दिन अधकार मे पतित होते देख कौन ऐसा होगा जो तरस न खायगा? जिसने स्वसस्कार का विचार अपने मन मे ठान लिया हो, उसे ऐसे प्राणियो का साथ न करना चाहिए। मकदूनिया का वादशाह डेमेट्रियस कभी कभी राज्य का सव काम छोड अपने ही मेल के दस-पॉच साथियो को लेकर विपय-वासना मे लिप्त रहा करता था। एक बार वीमारी का वहाना करके इसी प्रकार वह अपने दिन काट रहा था। इसी वीच उसका पिता उससे मिलने के लिए गया और उसने एक हँसमुख जवान को कोठरी से वाहर निकलते देखा। जब पिता कोठरी के भीतर पहुँचा, तब डेमेट्रियस ने कहा "ज्वर ने मुझे अभी छोडा है।" पिता ने कहा "हॉ! ठीक है, वह दरवाजे पर मुझे मिला था।"

कुसग का ज्वर सव से भयानक होता है। यह केवल नीति और सद्वृत्ति का ही नाश नही करता, वल्कि वुद्धि का भी क्षय करता है। किसी युवा पुरुप की सगत यदि वुरी होगी, तो वह उसके पैर मे वँधी चक्की के समान होगी जो उसे दिन दिन अवनति के गढे मे गिराती जायगी, और यदि अच्छी होगी तो सहारा देने वाली बाहु के समान होगी जो उसे निरतर उन्नति की ओर उठाती जायगी।

इगलैंड के एक विद्वान् को युवावस्था मे राजा के दरवारियो मे जगह नही मिली। इस जिदगी-भर वह अपने भाग्य को सराहता रहा। वहुत से लोग तो इसे अपना वडा भारी दुर्भाग्य समझते, पर वह अच्छी तरह जानता था कि वहाँ वह वुरे लोगो की सगत मे पडता जो उसकी आध्या-

त्मिक उन्नति मे बाधक होते। वहुत से लोग ऐमे होते है जिनके घडी-भर के साथ से भी वुद्धि भ्रष्ट होती है, क्योकि उतने ही वीच मे ऐसी ऐसी वाते कही जाती है जो कानो मे न पडनी चाहिए, चित्त पर ऐमे ऐसे प्रभाव पडते है जिनसे उसकी पवित्रता का नाश होता है। वुराई अटल भाव धारण कर के वैठती है । वुरी वाते हमारी धारणा मे वहुत दिनो तक टिकती है । इस वात को प्राय सव लोग जानते है कि भद्दी दिल्लगी वा फूहड गीत जितनी जल्दी ध्यान पर चढते है, उतनी जल्दी कोई गभीर वा अच्छी वाते नही । एक वार एक मित्र ने मुझसे कहा कि उसने लडकपन मे कहाँ से एक वुरी कहावत सुन पाई थी जिसका ध्यान वह लाख चेष्टा करता कि न आवे, पर वार वार आता है । जिन भावनाओ को हम दूर रखना चाहते है, जिन वातो को हम याद नही करना चाहते, वे वार वार हृदय मे उठती है और वेधती है । अत तुम पूरी चौकसी रक्खो, ऐसे लोगो को कभी साथी न वनाओ जो अश्लील, अपवित्र और फूहड वातो से तुम्हे हँसाना चाहे। सावधान रहो । ऐसा न हो कि पहले-पहल तुम इसे एक वहुत सामान्य वात समझो और सोचो कि एक वार ऐसा हुआ, फिर ऐसा न होगा, अथवा तुम्हारे चरित्रवल का ऐसा प्रभाव पडेगा कि ऐसी वाते वकने वाले आगे चलकर आप सुधर जायँगे । नही, ऐसा नही होगा। जव एक वार मनुष्य अपना पैर कीचड मे डाल देता है, तव फिर यह नही देखता कि वह कहाँ और कैसी जगह पैर रखता है। धीरे धीरे उन वुरी वातो से अभ्यस्त होते होते तुम्हारी घृणा कम हो जायगी। पीछे तुम्हे उनसे चिढ न मालूम होगी, क्योकि तुम यह सोचने लगोगे कि चिढने की वात ही क्या है। तुम्हारा विवेक कुंठित हो जायगा और तुम्हे भले वुरे की पहचान न रह जायगी। अत मे होते होते तुम भी वुराई के भक्त वन जाओगे। अत हृदय को उज्ज्वल और निष्कलक रखने का

सव से अच्छा उपाय यही है कि बुरी सगत की छूत से बचो। यह पुरानी कहावत है कि—

'काजल की कोठरी मे कैसो हू सयानो जाय,
एक लीक काजर की लागिहै पै लागिहै।

जो कुछ ऊपर कहा गया है, उससे यह न समझना चाहिए कि मैं युवा पुरुषो को समाज मे प्रवेश करने से रोकता हूँ। नही, कदापि नही। अच्छा समाज यदि मिले तो उसका वहुत अच्छा प्रभाव पडता है और उससे आत्म-सस्कार के कार्य मे वडी सहायता मिलती है। प्राय देखने मे आता है कि गाँवो से जो लोग नगरो मे जीविका आदि के लिए आते हैं, उनका जी वहुत दिनो तक, सगी-साथी न रहने से, वहुत घवराता है और कभी कभी उन्हे ऐसे लोगो का साथ कर लेना पडता है जो उनकी रुचि के अनुकूल नही होते। ऐसे लोगो के लिए अच्छा तो यह होता है कि वे किसी साहित्य-समाज मे प्रवेश करे। पर वहाँ भी उन्हे उन सब बातो की जानकारी नही प्राप्त हो सकती जो स्वशिक्षा के लिए आवश्यक है। समाज मे प्रवेश करने से हमे अपना यथार्थ मूल्य विदित होता है। हम देखते है कि हम उतने चतुर नही हैं जितने एक कोने मे बैठ कर कोई पुस्तक आदि हाथ मे लेकर अपने को समझा करते थे। भिन्न भिन्न लोगो मे भिन्न भिन्न प्रकार के गुण होते हैं। यदि कोई एक वात मे निपुण है तो दूसरा दूसरी मे। समाज मे प्रवेश करके हम देखते है कि इस वात की कितनी आवश्यकता है कि लोग हमारी भूलो को क्षमा करे, अत हम दूसरो की भूल-चूक को क्षमा करना सीखते है। हम कई ठोकरे खाकर नम्रता और अधीनता का पाठ सीखते है। इनके अतिरिक्त और भी वडे-वडे लाभ होते हैं। समाज मे सम्मिलित होने से हमारी समझ वढती है, हमारी विवेक-बुद्धि तीव्र होती है, वस्तुओ और व्यक्तियो के सवध मे हमारी धारणा विस्तृत होती है, हमारी

सहानुभूति गहरी होती है, हमे अपनी शक्तियो के उपयोग का अभ्यास होता है। समाज एक परेड है जहाँ हम चढाई करना सीखते है, अपने साथियो के साथ-साथ मिलकर वढना और आज्ञा-पालन करना सीखते है, इनसे भी वढकर और-और वाते हम सीखते है। हम दूसरो का ध्यान रखना, उनके लिए कुछ स्वार्थ-त्याग करना सीखते है, सद्गुणो का आदर करना और सुदर चाल-ढाल की प्रशसा करना सीखते है। स्व-सस्काराभिलाषी युवक को उस चाल-व्यवहार की अवहेलना न करनी चाहिए जो भले आदमियो के समाज मे आवश्यक समझी जाती है। वडो के प्रति समान और सरलता का व्यवहार, वरावरवालो से प्रसन्नता का व्यवहार और छोटो के प्रति कोमलता का व्यवहार भलेमानुसो के लक्षण है। सुडौल और सुदर वस्तु को देखकर हम सव लोग प्रसन्न होते है। सुदर चाल-ढाल को देख हम सव लोग आनदित होते है। मीठे वचनो को सुन कर हम सव लोग सतुष्ट होते है । ये सव वाते हमे मनोनीत होती है, शिक्षा द्वारा प्रतिष्ठित आदर्श के अनुकूल होती है । किसी भले आदमी को यह कहते सुन कर कि फटी-पुरानी और मैली पुस्तक हाथ मे लेकर पढते नही वनता, हमे हँसना न चाहिए। सोचो तो कि तुम्हारी मडली मे कोई उजड्ड-गँवार आकर फूहड वाते वकने लगे तो तुम्हे कितना वुरा लगेगा।

"इत्यादि" की आत्म-कहानी

श्री यशोदानन्दन अखौरी

अखौरी जी का जन्म सं० १९४१ मे आरा में हुआ और निधन स० १९९५ में हुआ। 'भारत-मित्र', 'शिक्षा', 'विद्या विनोद' आदि पत्र-पत्रिकाओ के ये सम्पादक रहे हैं। सामयिक विचार-प्रवाह के अनुसार ये मनोयोगपूर्वक साहित्य-सृष्टि में तत्पर थे। इनके निबंध प्राय. वर्णनात्मक कोटि के हैं। पत्र-पत्रिकाओं की व्यावहारिक शैली में इनकी भाषा सरल और मुहाविरेदार है।

"शव्द-समाज" मे मेरा सम्मान कुछ कम नही। मेरा इतना आदर है कि वक्ता और लेखक लोग मुझे जबरदस्ती घसीट ले जाते है। दिन भर मे, मेरे पास न जाने कितने वुलावे आते है। सभा-सोसायटियो मे जाते-आते मुझे नीद-भर सोने की भी छुट्टी नही मिलती। यदि मै विना वुलाए भी कही जा पहुँचता हूँ तो भी सम्मान के साथ स्थान पाता हूँ। सच पूछिए तो "शव्द-समाज" मे यदि मै, "इत्यादि" न रहता, तो लेखको और वक्ताओ की न जाने क्या दुर्दशा होती। पर हाँ! इतना सम्मान पाने पर भी किसी ने आज तक मेरे जीवन की कहानी नही कही। ससार मे जो जरा भी काम करता है उसके लिए लेखक लोग खूब नमक-मिर्च लगाकर पोथे-के-पोथे रँग डालते है, पर मेरे लिए एक सतर भी किसी की लेखनी मे आज तक नही निकली। पाठक, इसमे एक भेद है।

यदि लेखक लोग सर्व-साधारण पर मेरे गुण प्रकाशित करते तो उनकी योग्यता की कलई जरूर खुल जाती, क्योकि उनकी शब्द-दरिद्रता की दशा मे मै ही उनका एकमात्र अवलम्ब हूँ। अच्छा, तो आज मैं चारो ओर से निराश होकर आपही अपनी कहानी कहने और गुणावली गाने बैठा हूँ। पाठक, आप मुझे "अपने मुँह मियाँ मिट्ठू" बनने का दोष न लगावे। मै इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

अपने जन्म का सन्-सम्वत्-मिति-दिन मुझे कुछ भी याद नही। याद है इतना ही कि जिस समय "शब्द का महा अकाल" पडा था उसी समय मेरा जन्म हुआ था। मेरी माता का नाम "इति" और पिता का "आदि" है। मेरी माता अविकृत "अव्यय" घराने की है। मेरे लिए यह थोडे गौरव की बात नही है, क्योकि भगवान् फणीद्र की कृपा से "अव्यय" वशवाले, प्रतापी महाराज "प्रत्यय" के कभी अधीन नही हुए। वे सदा स्वाधीनता से विचरते आए है।

मै जब लडका था तब मेरे माँ-बाप ने एक ज्योतिषी से मेरे अदृष्ट का फल पूछा था। उन्होने कहा था कि यह लड़का विख्यात और परोपकारी होगा, अपने समाज मे यह सबका प्यारा बनेगा; पर दोष है तो इतना है कि यह कुँवारा ही रहेगा। विवाह न होने से इसके बाल-बच्चे न होगे। यह सुनकर मा-बाप के मन मे पहले तो थोडा दु ख हुआ; पर क्या किया जाय? होनहार ही यह था। इसलिए सोच छोड कर उन्हे सतोष करना पडा। उन दोनो ने, अपना नाम चिर-स्मरणीय करने के लिए, (मुझसे ही उनके वश की इतिश्री थी) मेरा नाम कुछ और नही रक्खा। अपने ही नामो को मिला कर वे मुझे पुकारने लगे। इससे मै "इत्यादि" कहलाया।

पुराने जमाने मे मेरा इतना नाम नही था। कारण यह कि एक तो लडकपन मे थोडे लोगो से मेरी जान-पहचान थी; दूसरे उस समय बुद्धि-मानो के बुद्धि-भडार मे शब्दो की दरिद्रता भी न थी। पर जैसे-जैसे

शब्द-दारिद्रय वढता गया, वैसे-वैसे मेरा सम्मान भी बढता गया। आजकल की बात मत पूछिए। आजकल मै ही मै हूँ। मेरे समान सम्मानवाला इस समय मेरे समाज मे कदाचित् विरला ही कोई ठहरेगा। आदर की मात्रा के साथ मेरे नाम की सख्या भी बढ चली है। आजकल मेरे अनेक नाम है—भिन्न-भिन्न भाषाओ के "शब्द-समाज" मे मेरे नाम भी भिन्न-भिन्न है। मेरा पहनावा भी भिन्न-भिन्न है—जैसा देश वैसा ही भेस वनाकर मैं सर्वत्र विचरता हूँ। आप तो जानते ही होगे कि सर्वेश्वर ने हम "शव्दो" को सर्वव्यापक बनाया है। इसी से मैं, एक ही समय, अनेक ठौर काम करता हूँ। इस घडी विलायत की पार्लियामेट महासभा मे डटा हूँ, और इसी घडी भारत की पडित मडली मे भी विराजमान हूँ, जहाँ देखिए वही मै परोपकार के लिए उपस्थित हूँ।

मुझमे यह एक भारी गुण है, कि क्या राजा, क्या रक, क्या पडित, क्या मूर्ख, किसी के घर जाने-आने मे मै सकोच नही करता, और अपनी मानहानि नही समझता। अन्य "शब्दो" मे यह गुण नही। वे वुलाने पर भी कही जाने-आने मे बडा गर्व करते है; वहुत आदर चाहते है। जाने पर सम्मान का स्थान न पाने से रूठ कर उठ भागते है। मुझमे यह वात नही है, इसी से मैं सब का प्यारा हूँ।

परोपकार और दूसरे की मान-रक्षा तो मानो मेरा धधा ही है। यह किए बिना मुझे एक पल भी कल नही पडती। ससार मे ऐसा कौन है जिसके, अवसर पडने पर, मैं काम नही आता? निर्धन लोग जैसे भाडे पर कपडा-लत्ता पहन कर बडे-बडे समाजो मे बडाई पाते है, कोई उन्हे निर्धन नही समझता, वैसे ही मै भी छोटे-छोटे वक्ताओ और लेखको की दरिद्रता झटपट दूर कर देता हूँ। अव दो-एक दृष्टात लीजिए—

वक्ता महाशय वक्तृता देने को उठ खडे हुए है। अपनी पडिताई दिखाने के लिए सव शास्त्रो की वात थोडी-वहुत कहनी चाहिए। पर शास्त्र का

जानना तो अलग रहा, उन्हे किसी शास्त्र का पन्ना भी उलटने का सौभाग्य नही प्राप्त हुआ। इधर-उधर से सुनकर दो-एक शास्त्रो और शास्त्रकारो का नाम-भर जान लिया है। कहने को तो खडे हुए है, पर कहे क्या? अब लगे चिता के समुद्र मे डूबने-उतराने; और मुँह पर रूमाल दिए खाँसते-खूँसते इधर-उधर ताकने। दो-चार बूँद पानी भी उनके मुखमडल पर झलकने लगा। जो मुख-कमल पहले उत्साह-सूर्य की किरणो से खिल उठा था, अब ग्लानि और सकोच का पाला पड़ने से मुरझाने लगा। उनकी ऐसी दशा देख मेरा हृदय दया से उमड आया। उस समय मै, बिना वुलाए, उनकी सहायता के लिए जा खडा हुआ, और मैंने उनके कानो मे चुपके से कहा—"महाशय, कुछ परवा नही, आपकी मदद के लिए मै हूँ। आपके जी मे जो आवे आरभ कीजिए; फिर तो मै सब कुछ निबाह लूँगा।" मेरे ढाढस बँधाने पर बेचारे वक्ताजी के जी-मे-जी आया। उनका मन फिर ज्यो-का-त्यो हरा-भरा हो उठा। थोड़ी देर के लिए जो उनके मुखडे के आकाश-मडल मे चिता-चिह्न का बादल देख पडा था, वह मेरे ढाढस के झकोरे से एक-बारगी फट गया, और उत्साह का सूर्य्य फिर निकल आया। अब लगे वे यो वक्तृता झाडने—"महाशयो, मनु इत्यादि धर्म्मशास्त्रकार, व्यास इत्यादि पुराणकार, कपिल इत्यादि दर्शनकारो ने कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद इत्यादि जिन-जिन दार्शनिक-तत्त्व-रत्नो को भारत के भडार मे भरा है उन्हे देखकर मैक्स-मूलर इत्यादि पाश्चात्य पडित लोग बड़े अचभे मे आकर चुप हो जाते है।" इत्यादि इत्यादि।

यहाँ इतना कहने की जरूरत नही कि वक्ता महाशय धर्मशास्त्रकारो मे केवल मनु, पुराणकारो मे केवल व्यास, दर्शनकारो मे केवल कपिल का नाम-भर जानते है, और उन्होने कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद का नाम-भर सुन लिया है। पर देखिए मैंने उनकी दरिद्रता दूर कर उन्हे ऊपर से कैसा

पहनावा पहनाया कि भीतर के फटे-पुराने और मैले-चीथडे को किसी ने नही देखा।

और सुनिए—किसी समालोचक महाशय का किसी ग्रथकार के साथ बहुत दिनो से मनमुटाव चला आता है। जब ग्रथकार की कोई पुस्तक समालोचना के लिए समालोचक साहब के आगे आई, तब वे बडे प्रसन्न हुए, क्योकि यह दाँव तो वे बहुत दिनो से ढूँढ रहे थे। पुस्तक को बहुत कुछ ध्यान देकर, उलट कर, उन्होने देखा। कही किसी प्रकार का विशेष दोष पुस्तक मे उन्हे न मिला। दो-एक साधारण छापे की भूले निकली पर इससे तो सर्वसाधारण की तृप्ति नही होती। ऐसी दशा मे बेचारे समालोचक महाशय के मन मे मै याद आ गया। वे झटपट मेरी शरण आए। फिर क्या है ? पौ बारह ! उन्होने उस पुस्तक की यो समालोचना कर डाली—पुस्तक मे जितने दोष है, उन सभो को दिखा कर, हम ग्रथकार की अयोग्यता का परिचय देना तथा अपने पत्र का स्थान भरना, और पाठको का समय खोना, नही चाहते। पर दो-एक साधारण दोष हम दिखा देते है, जैसे, इत्यादि इत्यादि ।

पाठक, देखा ! समालोचक साहब का इस समय मैने कितना बडा काम किया। यदि यह अवसर उनके हाथ से निकल जाता तो वे अपने मनमुटाव का बदला क्योकर लेते ? यह तो हुई बुरी समालोचना की बात। यदि भली समालोचना करने का काम पडे, तो मेरे ही सहारे वे बुरी पुस्तको की भी ऐसी समालोचना भी कर डालते है, कि वह पुस्तक सर्वसाधारण की आँखो मे भली भासने लगती है और उसकी माँग चारो ओर से आने लगती है।

कहाँ तक कहूँ। मै मूर्ख को पडित बनाता हूँ। जिसे युक्ति नही सूझती उसे युक्ति सुझाता हूँ। लेखक को यदि भाव-प्रकाशित करने को भाषा नही जुटती तो भाषा जुटाता हूँ। कवि को जब उपमा नही

मिलती, उपमा बताता हूँ। सच पूछिए, तो मेरे पहुँचते ही अधूरा विषय भी पूरा हो जाता है। बस, क्या इतने से मेरी महिमा प्रगट नहीं होती ?

नागरिक-कर्त्तव्य

प्रो० गुलाबराय एम० ए०

गुलाबराय जी का जन्म सं० १९४४ मे इटावा मे हुआ। आगरा कालेज और सेंट जान्स कालेज मे अध्ययन कर आपने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। दर्शन आपका प्रिय विषय रहा है किन्तु हिन्दी साहित्य के प्रति बाल्यकाल से ही आपका दृढ़ अनुराग है। छतरपुर-नरेश के यहाँ कई वर्षो तक आप प्राइवेट सेक्रेटरी रहे और दर्शन के अध्ययन मे उनकी सहायता करते रहे है। हि० सा० सम्मेलन के इन्दौर और पूना अधिवेशनो के अवसर पर दर्शन परिषद् के ये सभापति भी रहे है। इस समय 'साहित्य-सन्देश' के आप सम्पादक है और सेंट जान्स कालेज आगरा के हिन्दी विभाग में अध्यापन का कार्य भी करते है। 'फिर निराशा क्यो', 'कर्तव्यशास्त्र', 'तर्कशास्त्र', 'नवरस', 'पाश्चात्यदर्शनो का इतिहास', 'विज्ञानविनोद', 'सिद्धान्त और अध्ययन', 'ठलुआ क्लब', 'काव्य के रूप' आदि आपकी प्रमुख कृतियाँ है।

गुलाबराय जी ने विचारात्मक और भावात्मक दोनो ही प्रकार के निबध लिखे है। विषय के अनुरूप साधारण हास-परिहास की शैली और गंभीर, विवेचनात्मक, मनोवैज्ञानिक शैली पर उनका एक सा अधिकार है। सस्कृत के तत्सम शब्द, सरल मुहाविरे और अग्रेजी शब्दो के प्रयोग भी आपके निबंधो में है पर विशेषता यह है कि हिन्दी मे अगरेजी शब्दो के पर्यायवाची भाव भी दे दिये जाते है। नवयुग की विचारधारा का वे

सदैव स्वागत करते रहे है। भाषा की सतर्कता और बोधगम्यता के लिए इनकी शैली प्रसिद्ध है।

नगर मे रहने वाले को नागरिक कहते है। नगर मे रहने के कारण नागरिक पर कुछ उत्तरदायित्व आ जाता है क्योकि मनुष्य नगर मे रहने के कारण एक जन-समुदाय के सम्वन्ध मे आ जाता है। यदि मनुष्य अकेला रहे तो सिवाय पेट भर लेने के उसका कोई कर्त्तव्य न होगा अथवा वह अपना समय ईश-भजन या प्रकृति के निरीक्षण मे गुजारता होगा। परन्तु समाज मे रहने के साथ कर्त्तव्य बढ जाता है। जिस समाज मे मनुष्य उत्पन्न हुआ है उसकी उन्नति करना उसका परम कर्त्तव्य है।

मनुष्य की उत्पत्ति समाज से हुई है। समाज से भरण पोषण शिक्षा आदि प्राप्त कर वह पुष्ट हुआ है। समाज ही मे उसकी आजीविका है। अत समाज की उन्नति मे वाधक होना घोर कृतघ्नता ही नही वरन् आत्महत्या है। समाज की उन्नति के लिए निम्नलिखित वाते आवश्यक है—

१ सफाई और स्वास्थ
२. शिक्षा
३ सामाजिक सगठन और धर्म
४ आर्थिक उन्नति
५ रक्षा और शाति
६ राजनीतिक उन्नति

सफाई और स्वास्थ

शरीर-रक्षा को शास्त्रो मे पहला धर्म-साधन वतलाया है—"शरीर माद्य खलु धर्म साधनम्" यदि शरीर ही नही तो धर्म कहाँ ? मनुष्य शरीर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन माना गया है। यदि वह स्वस्थ नही है तो

सब साधन विफल हो जाते है, इसीलिए कहा गया है कि 'तन्दुरुस्ती हजार नियामत'। मनुष्य को स्वय स्वस्थ रहना चाहिए और दूसरो के स्वस्थ रहने मे सहायक होना चाहिए। यदि हमारे पडोसी स्वस्थ नही है और यदि हमारा जलवायु शुद्ध नही, तो हमारे स्वास्थ्य को भी आघात पहुँचता है। हमारे बिगडने से समाज बिगडता है और समाज के बिगडने से हम बिगडते है। इस प्रकार क्रिया-प्रतिक्रिया रूप से बिगाड का रोग बढता रहता है और मनुष्य की हानि होती है। इसलिए मनुष्य सबसे पहले अपने आप स्वस्थ रहने का उद्योग करे। स्वस्थ रहने के लिए अपने शरीर, अपने वस्त्र और अपने घर की सफाई अत्यन्त आवश्यक है। अधिकाश रोग सफाई के अभाव से होते है। सफाई रखने से केवल शरीर ही स्वस्थ नही रहता वरन् मन भी प्रसन्न रहता है, और आत्म-गौरव बढता है। स्वय अपने को स्वच्छ कर अपने मुहल्ले तथा सारे नगर को स्वच्छ और आलोकित रखने मे सहायक होना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। जो लोग म्युनिसिपैल्टिी के मेम्बर नही है वे भी मेम्बरो पर जोर डाल कर इस कार्य में सहायक हो सकते है। चुनाव मे वे लोग व्यक्तिगत सम्बन्ध, आकर्पणो और प्रलोभनो को छोडकर सच्चे कार्यकर्त्ताओ को ही अपना मत (vote) दे। अस्पतालो के सुचारु रूप से चलाने और गरीबो को यथावत् दवाई पहुँचाने मे सहायक होना भी परम वाञ्छनीय है।

शिक्षा

शिक्षा के लिए जितना लिखा जावे थोडा है। शिक्षा से मनुष्य बनता है। प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह इस बात को देखे कि उसके बालको, और नगर वा मुहल्ले के अन्य बालक-बालिकाओ की ठीक-ठीक शिक्षा होती है या नही। यदि नही होती है तो किस कारण? यदि पाठशालाओ मे सुधार की आवश्यकता हो तो उस सुधार के लिए यत्न

करे और यदि लोगो की शिक्षा मे अरुचि हो तो उनको शिक्षा के लाभ बतलाने और उनके बालको के लिए शिक्षा सुलभ करवाने का प्रयत्न करे।

सामाजिक संगठन और धर्म

सारी उन्नति सहकारिता और सगठन पर निर्भर है। नागरिक को चाहिए कि वह स्वयं अपने सद्व्यवहार से लोगो मे प्रेम का व्यवहार बढावे, और दूसरो से घृणा-भाव को कम करे। लोग वर्णाश्रम-धर्म का पालन करे किन्तु उनका धर्म दूसरो को अपमानित न करे। कोई अपमानित होकर समाज मे नही रहना चाहता। धर्म को सेवा का साधन बनाकर उसके द्वारा परस्पर प्रीति-भाव और भ्रातृ-भाव बढाना चाहिए। नागरिक को चाहिए कि वह साम्प्रदायिकता और मत-भेद से उठने वाले झगडो को कम कर समाज को अग-भग होने से बचावे। स्वय दूसरो के मत का आदर कर लोगो मे उदारता के भावो की उत्पत्ति करे। परस्पर उदारता और आदान-प्रदान से ही सामाजिक सगठन पुष्ट होता है।

आर्थिक उन्नति

जिस प्रकार व्यक्ति का धन-हीन जीवन निरर्थक है वैसे ही समाज का। जो नागरिक सम्यक् आजीविका द्वारा धनोपार्जन नही करता वह समाज का घातक है। नागरिक को चाहिए कि स्वय बेकार न हो और दूसरो को बेकारी से बचावे। जो बेकार हो उनके लिए बेकारी दूर करने के साधन उपस्थित करे। नगर मे उद्योग-धन्धो की वृद्धि मे सहायता दे। जो लोग विद्या वा अनुभव के अभाव से अपना व्यवसाय वा व्यापार नही बढा सकते उनको अपनी विद्या और अनुभव से सहायता करे।

रक्षा और शाति

यद्यपि रक्षा और शाति पुलिस और मैजिस्ट्रेटो का कार्य है, तथापि उसमे नागरिको का सहयोग आवश्यक है। प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह वास्तविक अपराधियो का पता लगाने मे सहायता दे और इसी प्रकार बेगुनाहो को पुलिस के अत्याचार से बचाने का उद्योग करे। न्याय मे व्यक्तिगत सम्बन्धो और प्रलोभनो को स्थान न दे। देश की रक्षा के लिए फौजी स्वयसेवको अथवा सेवा-समितियो मे काम करे। जो कुछ काम करे—चाहे मेम्बरी हो, चाहे आनरेरी मैजिस्ट्रेटी हो और चाहे कलक्टरी हो—सब सेवा-भाव से करे, केवल आत्म-गौरव बढाने के लिए नही। नागरिक को चाहिए कि समाज को केवल चोर डाकुओ से रक्षित न रक्खे लेकिन उन लोगो से भी रक्षित रक्खे जो सभ्यता के आवरण मे लोगो को ठगते है। नागरिक को यह भी चाहिए कि आपस के लडाई-झगडे कम करके नगर मे शाति रक्खे। जहाँ तक हो लडाई-झगडे के कारणो को उपस्थित न होने दे। यदि नगर मे शाति-भग होती है तो दुर्जन तो आपस मे लडते है और सज्जनो की हानि होती है। जो व्यक्ति लडाई के कारण उपस्थित होते हुए देखकर उपेक्षा-भाव से मौन रहता है, वह उस लडाई मे सहायक होता है। हाँ, विरोध के शमन के लिए भी यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके लिए ऐसे उपाय न वर्ते जावे, जिनसे विरोध बढे, वरन् शाति और प्रेम के साथ शाति स्थापित करनी चाहिए।

राजनीतिक उन्नति

इसमे बडी सावधानी और धैर्य की आवश्यकता है। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य नही है कि वह नेता बने। जहाँ बहुत से नेता होते है वहाँ विनाश के साधन उपस्थित हो जाते है। धैर्य, दृढता और निश्चय के साथ किया हुआ कार्य सफल होता है। सत्य का अवलम्ब लेकर निर्भयता से

कार्य करना चाहिए। जहाँ पर मताधिकार का प्रश्न हो, जहाँ उसकी राय ली जावे, वहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक दे, उसमे किसी का पक्षपात न करे। धन और मान के प्रलोभनो से विचलित न हो। न वन्धुत्व, जाति और साम्प्रदायिकता का खयाल करे। राजनीतिक उन्नति के लिए वह इस वात का ध्यान रक्खे कि वही राजनीतिक व्यवस्था उत्तम है जिसमे समाज मे शाति और साम्य स्थापित रहे, सबको समान अधिकार रहे, कोई अपनी जाति वा मत के कारण समाज के किसी लाभ से वचित न रहे, सवको समान अवसर मिले, उचित कार्य करने मे किसी की स्वतन्त्रता मे वाधा न आवे, सबका—चाहे, वह पदाधिकारी हो और चाहे साधारण पुरुप—मान और गौरव रहे, लोग भूखे न मरे, किसानो का भार हलका हो, वेकारो की वेकारी कम हो, सम्पत्ति की रक्षा हो, धर्म के शातिपूर्वक आचरण मे वाधा न पडे, देशवासी देश की उन्नति के साधनो का स्वय निर्णय कर सके; और देश के सुचारु रूप से शासन का और उसकी रक्षा का स्वय अपने ऊपर भार लेने की योग्यता प्राप्त कर सके।

पुरस्कार

श्री जयशकर प्रसाद

बाबू जयशकर प्रसाद जी का जन्म सं० १९४६ को माघ शुक्लादशमी को काशी के एक वैश्य घराने मे हुआ और निधन स० १९९५ में हुआ। इनका घराना सुघनी साहु के नाम से प्रसिद्ध है। स्कूल मे तो प्रसाद जी ने शिक्षा कम पाई परन्तु घर पर ही रह कर, सस्कृत, बँगला, फारसी, हिन्दी और अगरेजी का आपने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। बाल्यकाल से ही साहित्यसेवा की आप मे रुचि थी। प्रसाद जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनके नाटको मे बौद्ध और गुप्तकालीन सस्कृति, उपन्यासो मे आधुनिक सामाजिक जीवन की विकृति और कहानियो मे भावनाओं के विश्लेषण के साथ मानसिक उथल-पुथल के मार्मिक चित्र है।

काव्य के क्षेत्र मे प्राचीनता से विद्रोह कर नवीनता को नियन्त्रित करने वाले वे सक्रान्तिकाल के कवि थे। छायावादी काव्य के वे आचार्य और सस्थापक माने जाते है। नाटककार, कथाकार आदि रह कर इन्होने युग का नेतृत्व अवश्य किया पर मूलत ये कवि है। 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी' आपके श्रेष्ठ काव्य है। 'कामायनी' महाकाव्य विश्व साहित्य की एक अमर रचना है।

'अजातशत्रु', 'स्कदगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' आदि आपके प्रसिद्ध नाटक है। 'ककाल' और 'तितली' इनके दो उपन्यास है और 'इन्द्रजाल', 'आकाश दीप' आदि कई कहानियो के सग्रह प्रसिद्ध है।

सौंदर्य, रूप और विलास के मनमोहक वर्णन इनकी कृतियो में है। प्रसाद जी वर्तमान काव्य युग के पावन प्रभात है, उच्चकोटि के दार्शनिक कलाकार है। चित्रभाषा शैली एव प्रतीक पद्धति के वे भावुक साहित्यकार है। प्रसादजी की कहानियाँ भी भाव प्रधान है। भावो की प्रचुरता के बीच इनके पात्र विवेक से अनुशासित होते है इसी से सजीव होते हुए भी दुर्लभ प्रतीत होते है। सवाद की कला मे वे बडे निपुण है। इनकी कहानियो का प्रारम्भ तो आकर्षक होगा ही पर अंत भी वैचित्र्यपूर्ण मिलता है—सहसा, ध्वन्यात्मक और भावपूर्ण। अपनी मधुमयी प्रकृति के अनुसार लाक्षणिक प्रयोगो से दृश्यों का मूर्त्तिमान सजीव चित्र वे प्रस्तुत कर देते है।

आर्द्रा नक्षत्र। आकाश मे काले-काले बादलो की घुमट, जिसमें देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोप। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुप झाँकने लगा था—देखने लगा था—महाराज की सवारी। शैलमाला के अचल मे समतल उर्वरा भूमि से सोधी-सोधी वास उठ रही थी। नगर तोरण मे जयघोप हुआ, भीड से गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखाई पडा। यह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरे भरता आगे बढने लगा।

प्रभात की हेम किरणो से अनुरजित नन्ही बूँदो का एक झोका आया और स्वर्ण मल्लिका के समान बरस पडा। मगल सूचना से जनता ने हर्पध्वनि की।

रथो, हाथियो और अश्वारोहियो की पक्ति जम गई। दर्शको की भीड भी कम न थी। गजराज बैठ गया, महाराज सीढियो से उतरे। सोभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियो के दो दल आम्र-पल्लवो से सुशोभित मगल कलश और फूल, कुकुम तथा खीलो से भरे थाल लिये, मधुर गान करते हुए आगे बढे।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कान थी। पुरोहित वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्णरजित हल की मूठ पकड कर महाराज ने सुन्दर जुते हुए पुष्ट बैलो को चलाने का सकेत किया। बाजा बजने लगा। किशोरी कुमारियो ने खीलो और फूलो की वर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिये महाराज को कृपक बनना पडा। उस दिन इन्द्र-पूजन की धूमधाम होती, गोठ होती, नगर-निवासी उस पहाडी भूमि मे आनन्द मनाते। प्रति वर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता, दूसरे राज्यो से भी युवक राजकुमार इस उत्सव मे बडे चाव से आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बडे कुतूहल से इस दृष्य को देख रहा था।

बीजो का एक थाल लिये कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए जब महाराज हाथ बढाते तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेत मधूलिका का ही था जो इस साल महाराज की खेती के लिए चुना गया था। इसीलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका को ही मिला। वह कुमारी थी, सुन्दरी थी। कौशेय वसन उसके शरीर मे इधर-उधर लहराता हुआ स्वय शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलको को। कृपक बालिका के शुभ्र भाल पर श्रम कणो की कमी न थी। वे सब बरोनियो मे गुँथे जा रहे थे। सम्मान और लज्जा उसके अधरो पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते, किन्तु महाराज को बीज देने मे उसने शिथिलता न दिखाई। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे—विस्मय से, कुतूहल से। और अरुण देख रहा था कृपक-कुमारी मधूलिका को! आह, कितना भोला सौन्दर्य! कितनी सरल चितवन!

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया थाल मे कुछ स्वर्णमुद्राये। वह राजकीय अनुग्रह था।

मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली, किन्तु साथ ही उसमे की स्वर्ण-मुद्राओ को महाराज पर न्योछावर कर बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भ्रकुटी भी जरा चढी ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा, "देव, यह मेरे पितृ-पितामह की भूमि है। इसे बेचना अपराध है। इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।" महाराज के बोलने से पहिले ही वृद्ध मत्री ने तीखे स्वर से कहा, "अबोध, क्या बक रही है ? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार ! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है, फिर कोशल का यह सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई, इस धन से अपने को सुखी बना।"

महाराज के सकेत करने पर मत्री ने कहा, "महाराज, वाराणसी युद्ध के अत्युत्तम वीर सिहमित्र की यह एकमात्र कन्या है।" महाराज चौक पडे। "सिहमित्र की कन्या ! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है ?"

"हॉ देव !" सविनय मत्री ने कहा।

"इस उत्सव के परम्परागत क्या नियम है, मन्त्रिवर !" महाराज ने पूछा।

"देव नियम तो बहुत साधारण है। किसी भी अच्छी जमीन को इस उत्सव के लिए चुन कर नियमानुसार पुरस्कार स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक अर्थात् भू-सम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।"

महाराज को विचार-सघर्ष से विश्राम की आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जयघोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने अपने शिविरो मे चले गये। किन्तु मधूलिका को उत्सव मे फिर किसी ने न देखा। वह

खेत की सीमा पर विशाल मधूक वृक्ष के चिकने हरे पत्तो की छाया मे अनमनी चुपचाप बैठी रही।

× × ×

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमे सम्मिलित नही हुआ। वह अपने विश्राम-भवन मे जागरण कर रहा था। आँखो मे नीद न थी। प्राची मे जैसी गुलाबी खिल रही थी, वही रग उसकी आँखो मे था। सामने देखा तो मुडेर पर कपोती एक पैर खडी पख फैलाये अँगडाई ले रही थी। अरुण उठ खडा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते-देखते नगर तोरण पर जा पहुँचा। रक्षक-गण ऊँघ रहे थे, अश्व के पैरो के शब्द से चौक उठे।

युवक कुमार तीर सा निकल गया। सिन्धु देश का तुरग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता-घूमता अरुण उसी वृक्ष के नीचे पहुँचा जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवी लता वृक्ष की शाखा से च्युत हो कर पडी है। सुमन मुकुलित थे, भ्रमर निस्पन्द। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का सकेत किया उस सुषमा को देखने के लिए। किन्तु कोकिल बोल उठी। उसने अरुण से प्रश्न किया, "छि, कुमारी के सोये हुए सौन्दर्य को देखने वाले धृष्ट तुम कौन?" मधूलिका की आँखे खुल पडी। उसने देखा, एक अपरिचित युवक। वह सकोच से उठ बैठी। "भद्रे! तुम्ही न कल के उत्सव की परिचारिका रही हो?"

"उत्सव, हाँ उत्सव ही तो था।"

"कल उस सम्मान ...."

"क्यो आपको कल का स्वप्न सता रहा है। भद्र, आप क्या मुझे इस अवस्था मे सतुष्ट न रहने देगे?"

"मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है, देवि!"

"मेरे उस अभिनय का, मेरी विडम्बना का। आह, मनुष्य कितना निर्दय है! अपरिचित, क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग!"

"सरलता की देवि! मै मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ। मेरे हृदय की भावना अवगुण्ठन मे रहना नही जानती। उसे अपनी..."

"राजकुमार, मैं कृषक-बालिका हूँ। आप नन्दन-बिहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम कर के जीने वाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छिन गया है। मै दु ख से विकल हूँ, मेरा उपहास न करो।"

"मै कोशल-नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हे दिलवा दूगा।"

"नही, वह कोशल का राष्ट्रीय नियम है। मै उसे बदलना नही चाहती, चाहे उससे मुझे कितना ही दु.ख हो।"

"तब तुम्हारा रहस्य क्या है?"

"यह रहस्य मानव हृदय का है, मेरा नही। राजकुमार, नियमो से यदि मानव हृदय बाध्य होता, तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिच कर एक कृषक-बालिका का अपमान करने न आता।" मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खा कर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणो से उसका रत्न-किरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार कर के क्या स्वयं आहत न हुई? उसके हृदय मे टीस सी होने लगी। वह सजल नेत्रो से उडती हुई धूल देखने लगी।

× × ×

मधूलिका ने राजा का प्रतिदान, अनुग्रह नही लिया। वह दूसरे खेतो मे काम करती और चौथे पहर रूखी-सूखी खा कर पड़ रहती। मधूक वृक्ष के नीचे छोटी सी पर्णकुटीर थी। सूखे डण्ठलो से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वही आश्रय था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता, वही उसकी साँसो को बढाने के लिए पर्याप्त था। दुबली होने पर भी उसके

अगो मे तपस्या की कान्ति थी। आस पास के कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने वर्ष बीतने लगे।

शीत काल की रजनी, मेघो से भरा आकाश जिसमे बिजली की दौड-धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था। ओढने की कमी थी। वह ठिठुर कर एक कोने मे बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढा कर सोच रही थी। जीवन मे सामजस्य बनाये रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ घटती बढती रहती है। आज बहुत दिनो बाद उसे बीती बात स्मरण हुई "दो—नही तीन वर्ष हुए होगे, इसी मधूक के नीचे, प्रभात मे, तरुण राजकुमार ने क्या कहा था?"

वह अपने हृदय से पूछने लगी, उन चाटुकी शब्दो को सुनने के लिए उत्सुक सी वह पूछने लगी—"क्या कहा था?" दुःख-दग्ध हृदय उन स्वप्न सी बातो का स्मरण रख सकता और स्मरण ही होता, तो कष्टो की इस काली निशा मे वह कहने का साहस करता? हाय री विडम्बना!

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। असहाय दारिद्र्य की ठोकरो ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया था। मगध की प्रासादमाला के वैभव का काल्पनिक चित्र उन सूखे डण्ठलो की रन्ध्रो से नीचे, नभ मे बिजली के आलोक मे नाचता हुआ सा दिखाई देने लगा। खेलवाडी शिशु जैसे श्रावण की सन्ध्या मे जुगुनू को पकडने के लिए हाथ लपकाता है वैसे ही मधूलिका, "अभी वह निकल गया", मन ही मन कह रही थी। वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गडगडाहट बढने लगी, ओले पडने की सम्भावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोपडी के लिए काँप उठी। सहसा बाहर शब्द हुआ, "कौन है यहाँ? पथिक को आश्रय चाहिए।"

मधूलिका ने डठलो का कपाट खोल दिया। विजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोडे की बागडोर पकडे खडा है। सहसा वह चिल्ला उठी, "राजकुमार!" 'मधूलिका' आश्चर्य से युवक ने कहा। एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देख कर चकित हो गई। "इतने दिनो के बाद आज फिर?"

अरुण ने कहा, "कितना समझाया मैने। किन्तु "

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था का संकेत करने देना नही चाहती थी। उसने कहा, "और आज आपकी यह क्या दशा है?"

सिर झुका कर अरुण ने कहा, "मै मगध का विद्रोही निर्वासित कोशल मे जीविका खोजने आया हूँ।" मधूलिका उस अधकार मे हँस पडी। मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक-बालिका, यह भी एक विडम्बना है। तो भी मै स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।

× × ×

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे से धुली हुई चाँदनी, हाड कँपा देनेवाला समीर, तो भी अरुण और मधूलिका दोनो पहाडी गहर के द्वार पर वट-वृक्ष के नीचे बैठे हुए बाते कर रहे थे। मधूलिका की वाणी मे उत्साह था, किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा, "जब तुम इतनी विपन्न अवस्था मे हो, तो फिर इतने सैनिको को साथ रखने की क्या आवश्यकता है?"

"मधूलिका, बाहुबल ही तो वीरो की आजीविका है। ये मेरे जीवन-मरण के साथी है। भला मै इन्हे कैसे छोड़ देता? और करता ही क्या?"

"क्यो हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते। अब तो तुम .।"

"भूल न करो। मै अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ। निराश क्यो होऊँ?" अरुण के शब्दो मे कम्पन था, जैसे वह कुछ कहना चाहता है, पर कह नही सकता।

"नवीन राज्य, ओ हो तुम्हारा उत्साह तो कम नही। भला कैसे ? कोई नवीन ढग बताओ तो मैं भी कल्पना का आनन्द झेलू।"

"कल्पना का आनन्द नही मधूलिका, मैं तुम्हे राज रानी के सम्मान मे सिंहासन पर बैठाऊँगा। तुम अपने छिन हुए खेत की चिन्ता करके भयभीत न हो।"

एक क्षण मे मधूलिका के मन मे प्रमोद का अँधड बहने लगा-द्वन्द्व मच गया। उसने सहसा कहा, "आह, मे सचमुच तुम्हारी आज तक प्रतीक्षा करती थी राजकुमार !"

अरुण ढिठाई से उसके हाथो को दवा कर वोला, "तो मेरा भ्रम था। तुम सचमुच मुझे प्यार करती थी ?"

युवती का वक्षस्थल फूट उठा, वह 'हाँ' भी नही कह सकी, 'न' भी नही। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को हाथ से जाने नही दिया। तुरन्त वोल उठा, "तुम्हारी इच्छा हो तो प्राणो से प्राण लगाकर मैं तुम्हे इसी कोशल-सिहासन पर बैठा दूँ। मधूलिका ! अरुण के खड्ग का आतक देखोगी ?" मधूलिका एक बार काँप उठी। वह कहना चाहती थी, नही, किन्तु उसके मुँह से निकला, "क्या!"

"सत्य मधूलिका, कोशल नरेश तभी से तुम्हारे लिये चिन्तित है। यह मैं जानता हूँ। तुम्हारी साधारण सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित है कि कोशल सेनापति अधिकाश सैनिको के साथ पहाडी दस्युओ का दमन करने के लिये वहुत दूर चले गये हैं।"

मधूलिका की आँखो के आगे बिजलियाँ हँसने लगी। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा, "तुम वोलती नही हो।"

"जो कहोगे, वही करूँगी।"

स्वर्ण-मञ्च पर कोशल-नरेश अधलेटी अवस्था मे आँखे मुकुलित किए है। एक चामर-धारिणी युवती पीछे खडी अपनी कलाई बडी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ आन्दोलन उस प्रकोष्ठ मे धीरे-धीरे सचलित हो रहे है। ताम्बूल वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खडा है।

प्रतिहारी ने कहा, "जय हो देव, एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है।"

आँखे खोलते हुए महाराज ने कहा, "स्त्री प्रार्थना करने आई है! आने दो।"

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आई। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा, "तुम्हे कही देखा है।"

"तीन बरस हुए देव! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।"

"ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट मे बिताये। आज उसका मूल्य माँगने आई हो। क्यो? अच्छा, अच्छा, तुम्हे मिलेगा। प्रतिहारी!"

"नही महाराज! मुझे मूल्य नही चाहिए।"

"मूर्खे! फिर क्या चाहिए?"

"उतनी ही भूमि, दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जगली भूमि! वहाँ मै अपनी खेती करूँगी। मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यो से मेरी सहायता करेगा। भूमि को समतल भी तो बनाना होगा।"

महाराज ने कहा, "कृषक-बालिके! वह तो बडी ऊबड-खाबड जमीन है। तिस पर दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्व रखती है।"

"तो फिर निराश लौट जाऊँ?"

"सिहमित्र की कन्या, मै क्या करूँ, तुम्हारी यह प्रार्थना. ।"

"देव, जैसी आज्ञा हो।"

"जाओ तुम श्रमजीवियो को उसमे लगाओ। मै अमात्य को आज्ञापत्र देने का आदेश करता हूँ।"

'जय हो देव!" कह कर प्रणाम करती हुई मधूलिका राज-मन्दिर से बाहर आई।

दुर्ग के दक्षिणी नाले के तट पर घना जगल है। आज वहाँ मनुष्यो के पद-सचार से शून्यता भग हो रही थी। अरुण के छिपे हुए मनुष्य स्वतत्रता से इधर-उधर घूमते थे। झाडियो को काट कर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर उधर यो ही कोई नही आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का खेत बन रहा था। किसको इसकी चिन्ता थी ?

एक घने कुज मे अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नत्रो से देख रहे थे। सध्या हो चली थी। उस निविड वन मे इन स्वागत मनुष्यो को देख कर पक्षीगण अपने नीड को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे। प्रसन्नता से अरुण की आँखे दमक उठी। सूर्य की अतिम किरणे झुरमुट से घुस कर मधूलिका के कपोलो से खेलने लगी। अरुण ने कहा, "चार पहर और विश्वास करो और प्रभात ही मे इस जीर्ण कलेवर कोशल राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती मे तुम्हारा अभिषेक होगा। और मगध से निर्वासित मैं एक स्वतत्र राष्ट्र का अधिपति बनूगा, मधूलिके !"

"भयानक, अरुण ! तुम्हारा साहस देख कर मैं चकित हो रही हू। केवल सौ सैनिको से तुम !"

"रात के तीसरे प्रहर मे मेरी विजय-यात्रा होगी, मधूलिके !"

"तो तुमको इस विजय पर विश्वास है ?"

"अवश्य, तुम अपनी झोपडी मे यह रात बिताओ, प्रभात से तो राज-मन्दिर ही तुम्हारा लीला-निकेतन बनेगा।"

मधूलिका प्रसन्न थी। वह कभी-कभी उद्विग्न सी हो कर बालको के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता। सहसा कोई सकेत पा कर उसने कहा, "अच्छा, अधकार अधिक हो गया। अभी तुम्हे दूर जाना है और मुझे भी प्राणपण से इस अभियान के प्रारभिक कार्यो को अर्धरात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए। इसलिए रात्रि भर के लिए

विदा।" मधूलिका उठ खडी हुई, क्रम से बढने वाले अन्धकार मे, वह अपनी झोपडी की ओर चली।

पथ अन्धकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड अधकार से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा। मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख-कल्पना थी, जैसे अधकार मे विलीन हो गई। वह भयभीत थी, पहिला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो? फिर सहसा सोचने लगी वह सफल क्यो हो? श्रावस्ती दुर्ग एक विदेशी के हाथ क्यो चला जाय? मगध कोशल का चिर शत्रु! ओह, उसकी विजय! कोशल-नरेश ने क्या कहा था, 'सिहमित्र की कन्या' सिहमित्र कोशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है। नही, नही, 'मधूलिका', 'मधूलिका' जैसे उसक पिता उस अधकार मे पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी, रास्ता भूल गई।

रात एक पहर बीत गई, पर मधूलिका अपनी झोपडी तक नही पहुँची। वह उधेडबुन मे विक्षिप्त सी चली जा रही है। उसकी आँखो के सामने कभी सिहमित्र और कभी अरुण की मूर्त्ति चित्रित हो जाती। उसे सामने आलोक दिखाई पडा। वह बीच पथ मे खडी हो गई। प्राय एक से उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे। आगे-आगे एक वीर अधेड सैनिक था। उसके बाँये हाथ मे अश्व की वल्गा और दाहिने हाथ मे नग्न खड्ग। अत्यन्त धीरता से वह टुकडी अपने पथ पर चल रही थी। परन्तु मधूलिका बीच पथ से नही हटी। सैनिक ने अश्व रोक कर कहा, "कौन?" कोई उत्तर नही मिला। तव तक दूसरे अश्वारोही ने कडक कर कहा, "तू कौन है स्त्री? कोशल के सेनापति को शीघ्र उत्तर दे।"

रमणी जैसे विचार-ग्रस्त स्वर मे चिल्ला उठी, "बाँध लो, मुझे बाँध लो, मेरी हत्या करो! मैने अपराध ही ऐसा किया है।"

सेनापति हँस पडे, बोले, "पगली है।"

"पगली नही, यदि वही होती तो इतनी विचार-वेदना ही क्यो होती। सेनापति मुझे बाँध लो, राजा के पास ले चलो।"

"क्या है, स्पष्ट कह।"

"श्रावस्ती का दुर्ग एक पहर मे दस्युओ के हस्तगत हो जायगा। दक्षिणी नाले के पार उनका आक्रमण होगा।"

सेनापति चौक उठे। उन्होने आश्चर्य से पूछा, "तू क्या कह रही है ?"

"मै सत्य कह रही हूँ, शीघ्रता कीजिये।"

सेनापति ने अस्सी सैनिको को नाले के उस पार धीरे-धीरे बढने की आज्ञा दी और स्वय बीस अश्वारोहियो के साथ दुर्ग की ओर बढे। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गई।

× × ×

श्रावस्ती का दुर्ग, कोशल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात मे अपने विगत वैभव के स्वप्न देख रहा था। मित्र राज्यवशो ने उसके प्रान्तो पर अधिकार कर लिया था। अव वह कई गाँवो का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्ण-गाथाये लिपटी है। यही लोगो की ईर्ष्या का कारण है। दुर्ग के प्रहरी चौक उठे, जब थोडे से अश्वारोही वडे वेग से आते हुए दुर्ग-द्वार पर रुके। उल्का के आलोक मे उन्होने सेनापति को पहिचाना तब द्वार खुला। सेनापति घोडे की पीठ से उतरे। उन्होने कहा, "अग्निसेन, दुर्ग मे कितने सैनिक होगे ?"

"सेनापति की जय हो, दो सौ।"

"उन्हे शीघ्र एकत्र करो, किन्तु बिना किसी शब्द के। १०० को ले कर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक, और शब्द न हो।"

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का सकेत कर सेनापति राजमन्दिर की ओर वढे। प्रतिहारी ने

सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वह अपनी सुख-निद्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। किन्तु सेनापति और साथ मे मधूलिका को देखते ही चंचल हो उठे। सेनापति ने कहा, "जय हो देव, इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पडा है।"

महाराज ने स्थिर नेत्रो से देख कर कहा, "सिहमित्र की कन्या! फिर यहाँ क्यो? क्या तुम्हारा क्षेत्र नही बन रहा? कोई बाधा? सेनापति! मैंने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी के सम्बन्ध मे तुम कहना चाहते हो?"

"देव! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज दुर्ग मे प्रवेश कर लेने का प्रबन्ध किया है। और इसी स्त्री ने मुझे पथ मे सन्देशा दिया है।"

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह कॉप उठी। घृणा और लज्जा से वह गडी जा रही थी। राजा ने पूछा, "मधूलिका, क्या यह सत्य है?"

"हाँ, देव!"

राजा ने सेनापति से कहा, "सैनिको को एकत्र कर के तुम चलो, मैं अभी आता हूँ।" सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा, "सिहमित्र की कन्या, तुमने एक बार फिर कोशल का उपकार किया, यह सूचना दे कर तुमने पुरस्कार का काम किया। अच्छा, तुम यही ठहरो, पहिले उन आततायियो का प्रबन्ध कर लूँ।"

× × ×

अपने साहसिक अभिमान मे अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक से अतिरजित हो उठा। भीड ने जयघोष किया। सब के मन मे उल्लास था। श्रावस्ती दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ मे जाने से बचा। आबाल वृद्ध नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

ऊषा के आलोक मे सभा मण्डल दर्शको से भर गया। बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष हुंकार की, "वध करो।" राजा ने सहमत हो कर

कहा, "प्राण दण्ड।" मधूलिका बुलाई गई। वह पगली सी आकर खडी हो गई। कोशल नरेश ने पूछा, "मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग।" वह चुप रही।

राजा ने कहा, "मेरे निज की जितनी खेती है, वह सब तुझे देता हूँ।" मधूलिका ने एक बार वन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा, "मुझे कुछ न चाहिए।" अरुण हँस पडा। राजा ने कहा, "नही, मै तुझे अवश्य दूंगा, माँग लो।"

"तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले।" कहती हुई वह जा वन्दी अरुण के पास खडी हो गई।

सृष्टि की उत्पत्ति

श्री रामचन्द्र वर्मा

श्री रामचन्द्र वर्मा का जन्म सं० १९४६ में काशी के एक उच्च खत्री कुल मे हुआ। स्कूल का अध्ययन तो इनका कम रहा है पर घर पर ही विविध भाषाओं का अच्छा ज्ञान-संचय इन्होने किया। गुजराती, मराठी, बँगला, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी आदि के अच्छे ज्ञाता है। बिहार-बंधु, नागरी प्रचारिणी पत्रिका तथा नागरी प्रचारिणी लेखमाला के संपादक रहे है। हिन्दी शब्द सागर के सहकारी सम्पादक का कार्य भी बड़ी तन्मयता के साथ ये करते रहे है। इनके अनूदित ग्रन्थो मे 'हिन्दू राजतन्त्र', 'दासबोध', 'करुणा', 'अकबरी दरबार', और द्विजेन्द्रलाल राय के अनेक नाटक है। मौलिक कृतियो में 'मानव-जीवन', 'भूकंप', 'उपवास चिकित्सा', 'अच्छी हिन्दी', 'हिन्दी प्रयोग' आदि ग्रन्थ है। इनका भाषा पर ऐसा अच्छा अधिकार है कि राजनीति, अर्थशास्त्र विषयो के अनूदित ग्रन्थ भी स्वतत्र से प्रतीत होते है। इनकी भाषा सुबोध और हृदयग्राही है।

बहुत से लोग यह नही जानते होगे कि पृथ्वी की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है और वह किस प्रकार वर्तमान स्थिति तक पहुँची है। सब से पहले इमैनुअल काट ने पृथ्वी की उत्पत्ति के सबध मे एक सिद्धात स्थिर किया था और पीछे से लप्लेस ने बहुत ही विवेचना-पूर्वक उसी सिद्धात के आधार पर बहुत से नये और अधिक सूक्ष्म सिद्धात स्थिर किये थ।

अधिकाश वैज्ञानिक-जगत् प्राय उन्ही सिद्धान्तो से सहमत है। अत यहाँ पहले हम उन्ही सिद्धान्तो का सक्षेप मे वर्णन करेगे।

उन सिद्धान्तो के अनुसार आजकल प्राय यही माना जाता है कि आरम्भ मे केवल आकाश (Ether) था, जिसका कुछ अश कुछ समय के उपरान्त वाष्प के रूप मे परिणत हो गया। इस वाष्प के अलग-अलग समूह आकाश मे चक्कर लगाने लगे। उनमे से कोई समूह बडा था और कोई छोटा। बडे समूहो ने कुछ समय मे सूर्य का रूप धारण किया और छोटे समूहो ने ग्रहो का। सृष्टि का यह काम अभी तक बराबर जारी है। अब तक आकाश मे अनेक ऐसे वाष्प-पुज भ्रमण कर रहे है। उनमे हेलियम नामक पदार्थ ही अधिकता से है इसीलिए उन्हे हेलियम तारे (Helium Stars) कहते है। ऐसे तारो का रग कुछ नीलापन लिये सफेद होता है। धीरे-धीरे इन जलते हुए तारो की गरमी कम होने लगती है और ये कुछ घने और ठोस होने लगते है। उस समय उनका रग कुछ पीला, जैसा कि हमारे सूर्य का है, हो जाता है। जिस समय ये और भी ठोस और ठढे हो जाते है, उस समय इनका रग कुछ लाल होने लगता है, और कुछ समय के उपरान्त बहुत अधिक ठोस और ठढे होने पर इनका रग गहरा लाल हो जाता है।

यह तो हुई सूर्यो की उत्पत्ति। अब ग्रहो की उत्पत्ति लीजिये। पहली बात तो यह है कि सूर्यो की अपेक्षा ग्रह बहुत छोटे होते है, इसीलिए उनका ताप भी बहुत जल्दी घट जाता है और उनमे परिवर्तन भी बहुत शीघ्र होते है। दूसरी बात यह है कि ग्रह किसी सूर्य के साथ लग जाता है, जिससे उसकी दशा अन्यान्य सूर्यों से कुछ भिन्न हो जाती है। इस भिन्नता का कारण यह है कि उस पर किसी एक ही सूर्य का प्रभाव पडता है। हमारी पृथ्वी इसी प्रकार का एक ग्रह है। पहले यह केवल वाष्प-पुज थी, पर पीछे यह भी ठोस होने लगी। इसकी भाफ बदल कर पानी बनने लगी,

बादल बनने लगे और पानी बरसने लगा। पहले तो वह पानी गरमी के कारण भाफ बन जाता था, पर जब गरमी कम हुई, तब भाफ का बनना कम होने लगा और बरसा हुआ पानी यहीं एकत्र होने लगा। इसी एकत्र पानी से समुद्रों की सृष्टि हुई। उसके उपरान्त धीरे धीरे नदियों और पहाड़ों आदि की सृष्टि हुई। जल में जलचरों की और स्थल में वनस्पतियों की सृष्टि हुई। और तब नभचर तथा स्थलचर जीव बने। धीरे-धीरे वह उस अवस्था को पहुँची, जिसमें उसे हम लोग इस समय पाते है। अभी इस दशा मे भी बहुत कुछ परिवर्तन होने को बाकी है। उसका ऊपरी भाग तो ठंढा हो गया है, पर भीतरी भाग में बहुत कुछ ज्वाला भरी हुई है। अभी वह ज्वाला कम होगी, वायु कम होगी और जल भी कम होगा। उस समय उसकी दशा वैसी ही हो जायगी, जैसी इस समय मंगल की है। तदुपरात जब जल-वायु का बिल्कुल ही अभाव हो जायगा, तब वह बुध ग्रह के समान मृत हो जायगी, और बहुत सम्भव है कि किसी सूर्य से टकरा कर अथवा और किसी प्रकार भस्म भी हो जाय। लेकिन लाखो करोडो वर्षो मे पृथ्वी इस दशा को पहुँची है, और अभी उसका अंत भी लाखो करोडो वर्षों में होगा। हाँ, हम यह बतलाना भूल गए कि ग्रहो के साथ उपग्रह भी होते है। उपग्रहो की सृष्टि प्राय ग्रहो से होती है। चद्रमा हमारी पृथ्वी का उपग्रह है। ज्योतिषियो का मत है कि हमारी पृथ्वी जिस समय वाष्प के रूप मे थी, उसी समय इसमे से एक टुकडा निकल कर अलग हो गया। आजकल के कुछ वैज्ञानिको का मत है कि यह टुकडा उसी स्थान से निकला था, जहाँ आजकल प्रशात महासागर है। वह टुकडा बहुत ही छोटा था। अत उसके जीवन-नाटक के सभी अक बहुत जल्दी-जल्दी हो गये और अब वह बिलकुल मृत है। उसमें नाम-मात्र को भी ताप नही रह गया।

यही कारण है कि ग्रहो और उपग्रहो की गति एक ही ओर होती है, वे प्राय एक ही धरातल मे चक्कर लगाते है और उनकी कक्षा या भ्रमण-मार्ग

प्राय गोलाकार होता है। सभी सूर्यो, ग्रहो और उपग्रहो आदि मे आरभ मे बहुत गरमी रहती है और धीरे धीरे वह गरमी कम होती जाती है। हमारी पृथ्वी की गरमी बहुत अधिक कम हो गई है, तो भी उसके भीतरी भाग मे अभी तक बहुत अधिक ज्वाला भरी हुई है। इस गरमी का सब से सरल प्रमाण यह है कि ज्यो-ज्यो हम पृथ्वी के गर्भ मे बढते जाते है, त्यो-त्यो हम गरमी भी अधिक अनुभव करते है। हिसाब लगा कर जाना गया है कि भूगर्भ मे प्रति पचास या साठ फुट उतरने पर प्राय एक डिग्री गरमी बढ जाती है। खानो और गहरे कुँओ की गरमी से भी यही बात सिद्ध होती है। अनुमान किया जाता है कि जमीन के अदर तीस मील की गहराई मे इतनी अधिक गरमी है कि उसमे पडते ही लोहा आप-से-आप गल सकता है, और पृथ्वी के ठीक मध्य मे तो प्राय सवा चार लाख डिग्री की गरमी होगी। पृथ्वी के ऊपर का जो स्थल या ठोस भाग है, वह उस जले हुए भाग के मुकाबले मे कुछ भी नही है जो पृथ्वी के अदर है। यदि सारी पृथ्वी को मनुष्य का शरीर मान लिया जाय, तो स्थल को चमडे की झिल्ली-मात्र ही मानना होगा, अर्थात् बहुत बडे जलते हुए आग के गोले पर हमारे स्थल का एक बहुत ही पतला गिलाफ चढा हुआ है।

ऊपर जो बाते बतलाई गई है, उन सब से यही सिद्ध होता है कि हमारी पृथ्वी किसी समय जलती हुई आग का एक गोला थी और धीरे धीरे गरमी के कम होने के कारण उसने वर्तमान रूप धारण किया है। यह रूप धारण करने मे इसे लाखो नही, बल्कि करोडो वर्ष लगे है। प्रोफेसर डारविन का मत है कि एक ऐसा जमाना भी था, जब कि पृथ्वी-तल पर भूकप की तरगो के समान इतनी बडी बडी तरगे उठती थी, जिनके कारण उसका टुकडा 'चद्रमा' उससे अलग हो गया था। वह टुकडा जब समुद्र पर तैरता होगा, उस समय उसमे बहुत ऊँची ऊँची तरगे उठती होगी। आँधियाँ भी उस समय बहुत ही तेज चलती होगी, जिनके कारण सारा जल और स्थल सदा बहुत

ही क्षुब्ध रहता होगा। इन बातो से सिद्ध होता है कि केवल हमारी पृथ्वी का ताप ही दिन पर दिन नही घटता जा रहा है, बल्कि उसमे होने वाले अनेक दूसरे उपद्रव भी (जैसे भूकप, समुद्र-कप, आँधियाँ आदि) बराबर कम होते जा रहे है। इन सभी उपद्रवो का जोर दिन पर दिन घटता जा रहा है। लेकिन यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बहुत पुराने जमाने मे जितनी तेजी से हमारी पृथ्वी का ताप घटता था, उतनी तेजी से अब नही घटता। इसी प्रकार बहुत दिनो पहले पृथ्वी का बहुत बडा भाग बहुत जल्दी-जल्दी उभरता और धँसता था। पर अब उसके उभरने और धँसने मे भी अपेक्षाकृत बहुत कमी हो गई है। इसी प्रकार भूकपो और ज्वालामुखी के प्रकोपो मे भी पहले की अपेक्षा अब बहुत कमी हो गई है। हम पहले बता चुके है कि हमारी पृथ्वी के भीतरी भाग मे बहुत अधिक मान मे बहुत ही जलता हुआ तरल पदार्थ है। पर कुछ वैज्ञानिको का मत इसके विरुद्ध भी है। वे कहते है कि पृथ्वी का भीतरी भाग ठोस और ठढा है। एक वैज्ञानिक का तो यहाँ तक मत है कि पृथ्वी के भीतरी भाग का घनत्व लोहे से भी अधिक है। एक जर्मन भूगर्भ-शास्त्री ने बहुत से ज्वालामुखी पर्वत आदि का भली भाँति निरीक्षण करके निश्चित किया था कि पृथ्वी का भीतरी भाग बिलकुल ठढा और ठोस है, और पृथ्वी-तल से साठ मील की गहराई पर उसमे स्थान-स्थान पर अग्नि के समुद्र और झीले है, अर्थात् पृथ्वी के भीतरी भाग मे तरल अग्नि उसी प्रकार है, जिस प्रकार मधु-मक्खियो के छत्ते के कोषो मे शहद भरा रहता है। ज्वालामुखी पर्वतो का उसी अग्नि से सबध रहता है, जिसके कारण ज्वालामुखी का भी स्फोट होता है, और भूकप भी आता है। ज्वालामुखी पर्वतो आदि के कारण जो दशा आजकल जापान की है, प्राय वही दशा किसी पुराने जमाने मे स्काटलैण्ड की भी रही होगी। सभव है, इसका कारण यह हो कि समय पाकर किसी एक स्थान की तरल-अग्नि का समुद्र शात

हो जाता हो और कभी दूसरे स्थान पर उसकी सृष्टि हो जाती हो। कुछ आधुनिक भूगर्भ-शास्त्रियो का मत है कि पृथ्वी के भीतरी भाग मे गरमी तो बहुत अधिक है, पर चारो ओर से उस पर जो दबाव पडता है, उस दवाव के कारण वह तरल नही रह सकती।

पृथ्वी की केतुनाभि चाहे तरल हो चाहे ठोस, पर यह बात सभी लोग मानते है कि पृथ्वी के भीतरी भाग मे बहुत अधिक ज्वाला, जलती हुई गैसे और गली हुई चट्टाने तथा धातुएँ आदि भरी हुई है, और उन्ही के कारण समय-समय पर ज्वालामुखी पर्वतो का स्फोट होता है, भूकप आता है, तप्त कुडो मे से खौलता हुआ पानी निकलता है तथा इसी प्रकार की अन्यान्य अनेक बाते होती है। बहुत बडे बड़े वैज्ञानिको और भूगर्भ-शास्त्रियो ने तो भूगर्भ के सबध मे बहुत-सी युक्तियाँ लडाई और बहुत-सी बाते बतलाई है, पर साधारणत: विचार करने पर यही बात ठीक जान पड़ती है कि उसके भीतर कही तरल अग्नि और कही ठोस चट्टाने आदि है। यदि पृथ्वी का सारा भीतरी भाग एकदम से तरल अग्नि ही होता, तो उसमे बहुत ही साधारण क्षोभ होने पर भी स्थान स्थान पर पृथ्वी आप से आप फट जाती और टुकडे टुकड़े हो जाती।

अग्नि सर्व-व्यापिनी है और साथ ही वह सारे विश्व का जीवन है। हम चाहे यह न कह सकते हो कि भूगर्भ में कहाँ, कितनी और कैसी कैसी अग्नि है, पर इतना अवश्य कह सकते है कि उसमे बहुत अधिक अग्नि है। यही अग्नि भूगर्भ मे अनेक प्रकार के उपद्रव और परिवर्तन आदि करती है, यही अग्नि ज्वालामुखी पर्वतो का स्फोट करती है, यही पृथ्वी को धँसाती है, यही पृथ्वी को उभारती है और यही प्रत्यक्ष रूप से भूकप भी लाती है। पृथ्वी के भीतरी ताप के दिन-पर-दिन घट जाने के कारण हम कह सकते है कि पृथ्वी पर के भौतिक उपद्रव भी आज तक उसी मान मे घटते आये है और भविष्य मे उसी मान मे सदा घटते रहेगे। पर पृथ्वी की आयु करोडो

वर्षों की हैं, इसलिए इस ह्रास का पता एक, दो या चार पीढ़ियों को नहीं लग सकता। ह्रास होता अवश्य है; पर उस ह्रास का स्थूल मान जानने के लिए लाखो वर्ष के अनुभव की आवश्यकता है। अल्प-जीवी मनुष्य उस ह्रास का केवल अनुमान कर सकता है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव करना उसके लिए नितात असभव है।

सागर और मेघ

श्री राय कृष्णदास

राय कृष्णदास का जन्म सं० १९४९ को काशी मे हुआ है। इनके पिता भारतेन्दु के फुफेरे भाई थे। बाल्यकाल से ही, कविता, कला और साहित्य मे इनकी अभिरुचि रही है। 'उपवन' और 'भावुक' दो कविता सग्रह प्रकाशित हुए है। रवीन्द्र की गीतांजलि से प्रभावित हो इन्होने हिन्दी में प्रारभिक युग के गद्य काव्य की रचना की है। इनकी कहानियो पर भी कुछ बग प्रभाव है। 'साधना,' 'छायापथ' और 'प्रवाल' मे इनके भावुक गद्य काव्य है। 'अनाख्या' और 'सुधांशु' इनकी कहानियो के सकलन है। 'सलाप' में कथोपकथन के द्वारा वैज्ञानिक तत्वों का अच्छा निरूपण हुआ है। ये श्रेष्ठ कलाविद भी है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में इनका स्थापित किया हुआ 'भारत कला भवन' नामक चित्रो और मूर्त्तियो का एक सुदर सग्रह है। 'भारत की मूर्ति कला', 'भारत की चित्र कला' नामक इनकी पुस्तको से इनके पुरातत्व और कला का ज्ञान लक्षित है।

इनकी भाषा भावमय सरस है। संस्कृत के तत्सम शब्दो के साथ उर्दू के और कुछ प्रान्तीय शब्द भी उसमें प्रयुक्त होते है। कल्पना के आधिक्य से कविता का सा आनन्द इनके गद्य में मिलता है।

सागर—मेरे हृदय मे मोती भरे है।

मेघ—हाँ, वे ही मोती जिनका कारण है—मेरी बूदे।

सागर—हाँ, हाँ, वही वारि जो मुझसे हरण किया जाता है। चोरी का गर्व !

मेघ—हाँ, हाँ, वही जिसको मुझसे पाकर बरसात की उमडी नदियाँ तुझे भरती है।

सागर—बहुत ठीक ! क्या आठ महीने नदियाँ मुझे कर नही देती ?

मेघ—(मुसकराया) अच्छी याद दिलाई। मेरा बहुत-सा दान वे पृथ्वी के पास धरोहर रख छोडती है, उसी से कर देने की निरतरता कायम रहती है।

सागर—वाष्पमय शरीर ! क्या बढ-बढ कर बाते करता है। अंत को तुझे नीचे गिरकर मुझी मे बिलाना पडेगा।

मेघ—खार की खान ! ससार-भर से नीच ! सारी पृथ्वी के विकार ! तुझे मै शुद्ध और मिष्ट बना कर उच्चतम स्थान देता हूँ। फिर तुझे अमृत-वारिधारा से तृप्त और शीतल करता हूँ। उसी का यह फल है।

सागर—हाँ, हाँ, दूसरे की करतूत पर गर्व। सूर्य का यश अपने पल्ले !

मेघ (अट्टहास करता है)—क्यों मै चार महीने सूर्य को विश्राम जो देता हूँ। वह उसी के विनिमय में यह करता है। उसका यह कर्म मेरी सम्पत्ति है। वह तो बदले मे केवल विश्राम का भागी है।

सागर—और मै जो उसे रोज विश्राम देता हूँ।

मेघ—उसके बदले तो वह तेरा जल शोषण करता है।

सागर—तब भी मै अपना व्रत नही छोड़ता।

मेघ—(इठला कर) धन्य रे व्रती, मानों श्रद्धापूर्वक तू सूर्य को वह दान देता है ! क्या तेरा जल वह हठात् नही हरता ?

सागर—(गभीरता से) और वाड़व जो मुझे नित्य जलाया करता है, तो भी मै उसे छाती से लगाए रहता हूँ। तनिक उस पर तो ध्यान दो।

मेघ (मुसकरा दिया)—हाँ, उसमें तेरा और नही, कुछ शुद्ध स्वार्थ है, क्योकि वह तुझे यदि जलाता न रहे तो तेरी मर्यादा न रह जाय।

सागर और मेघ

सागर—(गरज कर) तो उसमे मेरी क्या हानि! हाँ, प्रलय अवश्य हो जाय।

मेघ—(एक साँस ले कर) आ! यह हिंसा-वृत्ति। और क्या, मर्यादा-नाश क्या कोई साधारण बात है?

सागर—हो, हुआ करे। मेरा आयास तो बढ जायगा।

मेघ—आ! उच्छृखलता की इतनी बड़ाई?

सागर—अपनी ओर तो देख, जो बादल होकर आकाश मे इधर से उधर मारा-मारा फिरता है।

मेघ—धन्य तुम्हारा ज्ञान! मै यदि सारे आकाश मे घूम फिरके ससार का निरीक्षण न करूँ और जहाँ आवश्यकता हो जीवन-दान न करूँ, तो रसा नीरसा हो जाय, उर्वरा से वन्ध्या हो जाय। तू नीचे रहने वाला हम ऊपर रहने वालो के इस तत्त्व को क्या जाने?

सागर—यदि तू मेरे लिए ऊपर है, तो मै भी तेरे लिए ऊपर हूँ, क्योकि हम दोनो का आकाश एक ही है।

मेघ—हाँ! निस्सदेह ऐसी दलील वे ही लोग कर सकते है जिनके हृदय मे ककड-पत्थर और शख-घोघे भरे है।

सागर—वलिहारी तुम्हारी बुद्धि की, जो रत्नो को ककड-पत्थर और मोतियो को सीप-घोघे समझते हो।

मेघ—(बडे वेग से गडगड करके हँसता हुआ) तुम्हारे रत्न तो, तुम्हे मथकर, कभी के देवताओ ने निकाल लिए। अब तुम इन्ही को रत्न समझे बैठे हो।

सागर—और मनुष्य जो इन्हे निकालने के लिए नित्य इतना श्रम करते है, तथा इतने प्राण खोते है?

मेघ—वे अमरो की झूठी स्पर्धा करने मे मरे जाते है।

सागर—अच्छा ! जिनका स्वरूप प्रति क्षण बदला करता है, उनकी दलील का कोटि-क्रम ऐसा ही होता है।

मेघ—और जो क्षण-भर भी स्थिर नही रह सकते, उनकी तर्कना का नमूना तुम्हारी बाते है, क्यो न ?

सागर—अरे, अपनी सीमा मे रमने की मौज को अस्थिरता समझने वाले मूर्ख ! तू ढेर-सा हल्ला ही करना जानता है कि—

मेघ—हाँ, मै गरजता हूँ, तो बरसता भी हूँ। तू तो . .

सागर—यह भी क्यो नही कहता कि वज्र भी निपतित करता हूँ।

मेघ—हाँ, आततायियो को समुचित दड देने के लिए।

सागर—कि स्वतत्रो का पक्ष छेदन कर के उन्हे अचल बनाने के लिए ?

मेघ—हाँ, तू ससार को दलित करने वाले उच्छृखलो का पक्ष क्यो न लेगा, तू तो उन्हे छिपाता है न !

सागर—मै दीनो की शरण अवश्य हूँ !

मेघ—सच है अपराधियो के सगी ! यही दीनो की सहायता है कि ससार के उत्पातियो और अपराधियो को जगह देना और ससार को सदैव भ्रम मे डाले रहना।

सागर—दड उतना ही होना चाहिए कि दडित चेत जाय, उसे त्रास हो जाय। अगर वह अपाहिज हो गया तो—

मेघ—हाँ, वह भी कोई नीति है कि आततायी नित्य अपना सिर उठाना चाहे और शास्ता उसी की चिन्ता मे नित्य शस्त्र लिए खडा रहे, अपने राज्य की कोई उन्नति न करने पावे।

सागर—एक छोटे-से मैनाक की इतने बडे विश्व मे क्या गिनती ?

मेघ—जो अम्ल के एक बूद की मनो दूध मे। तू इस क्षात्र-धर्म की सूक्ष्मता को क्या समझे ?

सागर—और तूने हाथ मे नर-कंकाल का एक टुकडा ले लिया कि बडा वृहस्पति बन बैठा।

मेघ—आ ! सुरराज के शस्त्र की यह अपमानता। तू तो साठ हजार मर्त्यों का द्रव है।

सागर—तो क्या यह वात भी सत्य नही कि वज्र की रचना के लिए एक तपस्वी की हत्या कराई गई ?

मेघ—हाँ, कुलिश ने अपनी उत्पत्ति से दधीचि की तपस्या सफल कर दी थी।

सागर—तुम लोग जान ले लेना कोई वात ही नही समझते।

मेघ—हम हत्या, वध, आत्म-बलिदान, हिंसा, नाश आदि का विभेद जानते है। इन गहन विषयो को तू क्या समझे ?

सागर—मै हत्यारो से वात नही करना चाहता।

मेघ—और मै उन दुर्बल हृदय वालो से वात नही करना चाहता जो कायरता और कापुरुषता को धर्मभीरुता मानते हैं।

हिन्दी-साहित्य और मुसलमान कवि

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

बख्शी जी का जन्म सं० १९५१ में हुआ है। मध्य प्रान्त के थोड़े से प्रसिद्ध साहित्यिकों में बख्शी जी की गणना है। प० महावीरप्रसाद द्विवेदी के उपरान्त कई वर्षों तक 'सरस्वती' का सपादन कार्य ये करते रहे हैं। पाश्चात्य साहित्य की प्रवृत्तियो का इन्होंने अच्छा अध्ययन किया है। उनसे प्रेरणा ले कर ये समय समय पर आलोचनात्मक निबंध लिखते रहे हैं। 'विश्व साहित्य', 'पचपात्र' आदि आपके प्रमुख ग्रन्थ हैं। आपकी शैली मँजी हुई है। विवेचन का बोधगम्य स्वरूप उसमें मिलता है।

मुसलमानो का पहला आक्रमण सन् ६६४ ई० मे हुआ। उस समय मुसलमान मुलतान तक ही आकर लौट गये। उनका दूसरा आक्रमण ७११ मे हुआ। तब उन्होने सिन्धु देश पर अधिकार कर लिया था। परन्तु कुछ समय के बाद राजपूतो ने उनको वहाँ से हटा दिया। इसके बाद महमूद गज़नवी का आक्रमण हुआ। उस समय भी मुसलमानो का प्रभुत्व यहाँ स्थापित नही हुआ। सन् ११९३ मे मुसलमानो का शासन-युग प्रारम्भ हुआ। उत्तर भारत मे उनका साम्राज्य स्थापित हो जाने पर भी दक्षिण मे हिन्दू-साम्राज्य बना रहा। विजय नगर का पतन होने पर कुछ समय के लिए समग्र भारत पर से हिन्दू-साम्राज्य का लोप हो गया। परन्तु सत्रहवी सदी मे मराठे प्रबल हुए, और अन्त में उन्होने फिर

हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना की। इसी समय अंग्रेजो का प्रभुत्व बढा और कुछ ही समय मे हिन्दू और मुसलमान दोनो को अंग्रेजो का आधिपत्य स्वीकार करना पडा।

यद्यपि भारतवर्ष मे मुसलमानो का साम्राज्य सन् ११९३ से प्रारम्भ होता है तथापि कितने ही मुसलमान साधक और फकीर इन आक्रमण-कारियो के पहले ही यहाँ आ चुके थे। आठवी सदी मे जब मुसलमानो ने भारत का एक भाग विजय कर लिया तब तो हिन्दुओ और मुसलमानो मे घनिष्ठता हो गई। उस समय मुसलमानो का अभ्युदय बढ रहा था। बगदाद विद्या का केन्द्र हो गया था। भारतीय विद्वान खलीफा के दरबार तक जा पहुँचे। वहाँ उन लोगो की बदौलत सस्कृति के कितने ही ग्रन्थ-रत्नो का अनुवाद अरबी-भाषा मे हुआ। भारतवर्ष मे मुसलमानो ने केवल अपनी प्रभुता ही स्थापित नही की, किन्तु अपने धर्म का भी प्रचार किया। तभी हिन्दू और मुसलमान का विरोध आरम्भ हुआ। इस विरोध को दूर करने का सब से अधिक प्रयत्न किया कबीर ने। कबीर ने देखा कि भारत-वर्ष मे हिन्दू और मुसलमान का विरोध बिलकुल अस्वाभाविक है।

> कोइ हिन्दू कोइ तुरुक कहावै एक जमी पर रहिये।
> वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये।।
> वेद किताब पढै वे कुतबा वे मौलाना वे पाडे।
> बिगत बिगत के नाम धरायो यक माटी के भाडे।।

कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनो का हाथ पकड कर एक ही पथ पर ले जाना चाहते थे। परन्तु दोनो इस का विरोध करते थे। कबीर को उनकी इस मूढता—इस धर्मान्धता—पर आश्चर्य होता था। उन्होने देखा कि इस विरोधाग्नि मे पड कर दोनो नष्ट हो जायँगे।

स्वदेश की कल्याण-कामना से प्रेरित हो कबीर उस पथ को खोज निकालना चाहते थे जिस पर हिन्दू और मुसलमान दोनो चल कर अपनी आत्मोन्नति कर सके। उनका प्रयास व्यर्थ नही हुआ। हिन्दू और मुसलमान सम्मिलन की ओर अग्रसर हुए। भाषा के क्षेत्र मे इनका सम्मिलन बहुत पहले हो चुका था। अमीर खुसरो ने इस एकता की नीव को दृढ किया। हिन्दी मे कागज-पत्र, शादी-ब्याह, खत-पत्र आदि शब्द उसी सम्मिलन के सूचक है। उसके बाद जायसी ने मुसलमानो को हिदी साहित्य मे सौंदर्य का दर्शन कराया।

तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि।
जामे मारग प्रेम का सबै सराहै ताहि॥

मलिक मुहम्मद जायसी केवल कवि नही थे, साधक भी थे। हिन्दू और मुसलमान दोनो उनकी पूजा करते थे। कितने ही लोग उनके शिष्य थे। अतएव यह कहना नही होगा कि हिन्दी भाषा मे रचना कर उन्होने मुसलमानो को हिन्दू जाति से प्रेम करने की शिक्षा दी। जायसी के धार्मिक विचारो का आभास उनके 'अखरावट' से मिलता है। अपने धर्म मे अविचल रह कर भी कोई दूसरे के धर्म को श्रद्धा की दृष्टि से देख सकता है। यही नही, किन्तु वह उसमे सत्य का यथार्थ और अभिन्न रूप देख सकता है, यह बात जायसी की कृति से प्रकट होती है। हिन्दू भी मुसलमानो की तरह ईश्वर की सन्तान है। यही नही, उनका भी धर्म ईश्वर-प्रदत्त है। अतएव वे हमारी घृणा के पात्र नही। जायसी ने जो शिक्षाये दी है उनमे से ऐसी कोई शिक्षा नही है जिसे कोई हिन्दू स्वीकार न कर सके।

जिस आन्दोलन के प्रवर्त्तक कबीर थे उसकी पुष्टि जायसी के समान मुसलमान साधको और फकीरो ने की। भारत मे राजकीय सत्ता स्थापित करने के लिए हिदू और मुसलमान दोनो प्रयत्न करते रहे। परन्तु देश में

दोनो का स्थान निर्दिष्ट हो चुका था। भारत से मुसलमानो का उतना ही सम्बन्ध हो गया जितना हिन्दुओ का। प्रतिद्वन्द्वी होने पर भी इन दोनो के धर्मो का प्रवेश भारतीय सभ्यता मे हो गया। हिन्दी और फारसी से उर्दू की सृष्टि हुई। उसी प्रकार हिन्दू और मुसलमान की कला ने मध्य युग मे एक नवीन भारतीय कला की सृष्टि की। देश मे शान्ति भी स्थापित हुई। कृपको का कार्य निर्विघ्न हो गया। व्यवसाय और वाणिज्य की वृद्धि होने लगी। देश मे नवीन भाव का यथेष्ट प्रचार हो गया। अकबर के राजत्व-काल मे इसका पूरा प्रभाव प्रकट हुआ। उसके शासनकाल मे जिस साहित्य और कला की सृष्टि हुई उसमे हिन्दू और मुसलमान का व्यवधान नही था। अकबर के महामत्री अबुलफजल ने एक हिंदू मन्दिर के लिए जो लेख उत्कीर्ण कराया था उसका भावार्थ यह है —हे ईश्वर, सभी देव मदिरो मे मनुष्य तुम्ही को खोजते है, सभी भाषाओ मे मनुष्य तुम्ही को पुकारते है। विश्व-ब्रह्मवाद तुम्ही हो और मुसलमान धर्म भी तुम्ही हो। सभी धर्म एक ही बात कहते है कि तुम एक हो, तुम अद्वितीय हो। मुसलमान मसजिदो मे तुम्हारी प्रार्थना करते ह और ईसाई गिर्जाघरो मे तुम्हारे लिए घण्टा बजाते है। एक दिन मै मस्जिद जाता हूँ और एक दिन गिर्जा। पर मन्दिर-मन्दिर मे मै तुम्ही को खोजता हूँ। तुम्हारे शिष्यो के लिए सत्य न तो प्राचीन है और न नवीन। अबुलफजल का यह उद्गार मध्ययुग का नव सन्देश था। हिन्दी मे सूरदास और तुलसीदास ने अपने युग को इसी भावना से प्रेरित हो मनुष्य-जीवन मे श्रेष्ठ आदर्श दिखलाया। इसी भाव को ग्रहण कर मुसलमानो मे रहीम ने कविता लिखी। निम्नलिखित पद्यो से प्रकट हो जाता है कि रहीम ने हिन्दू भाव को कितना अपना लिया था।

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यो न चचला होय॥

गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव॥
जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तौ काहे कर पर धर्यो, गोवर्धन गोपाल॥

मुगलो के शासनकाल मे हिन्दी साहित्य की जो भी वृद्धि हुई उसका कारण यही है कि उस समय मुसलमान भारत को स्वदेश समझने लगे थे। न तो हिन्दुओ ने तत्कालीन राज-भाषा की उपेक्षा की और न मुसलमानों ने हिन्दू-साहित्य की। उस समय वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यो ने धार्मिक विरोध को भी हटाने की चेष्टा की। कितने ही मुसलमान साधक श्रीकृष्ण के उपासक हो गये। इनमे रसखान की भक्ति ने हिन्दी मे रस की धारा बहा दी है। उनका निम्नलिखित पद्य बडा प्रसिद्ध है।

मानुस हौ तो वही रसखान बसौ मिलि गोकुल गॉव गुवारन।
जो पशु होउँ कहा बसु मेरो चरौ नित नन्द की धेनु मझारन॥
पाहन हौ तो वही गिरि को जु कियो ब्रज छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग होउँ बसेरो करौ वही कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

मुसलमानो का यह प्रेम कम साहस का काम नही था। ताज का यह कथन सर्वथा उचित था---

सुनौ दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव-पूजा ठानी मैं नमाज हू भुलानी तजे
कलमा कुरान सारे गुनन गहूँगी मैं।
श्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्लेदार
तेरे नेह दाग मैं निदाघ ह्वै रहूँगी मैं।

नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै
ताण नाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं ।।

इसी प्रेम से प्रेरित हो कितने ही मुसलमान कवियो ने हिन्दी साहित्य को अपनी रचनाओ से अलकृत किया है।

राजनीति के क्षेत्र मे हिन्दू और मुसलमान जाति का विरोध नही दूर हुआ। समाज के क्षेत्र मे भी दोनो का सघर्षण बना रहा। तो भी साहित्य के क्षेत्र मे दोनो ने सत्य को ग्रहण करने मे सकोच नही किया।

चित्राङ्कण

श्री वियोगी हरि

श्री वियोगी हरि का पूर्व नाम हरिप्रसाद द्विवेदी है। परन्तु गुरु के वियोग में इन्होने वियोगी हरि नाम रख लिया है। इनका जन्म छत्रपुर में स० १९५३ में हुआ है। बाल्यकाल से ही भक्ति, वेदान्त और दर्शन में इनकी विशेष प्रवृत्ति रही है। अत. विवाह न कर के आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत के सकल्प के साथ २५ वर्ष की अवस्था में ही इन्होने वैराग्य ग्रहण कर लिया। ये व्रजभाषा और श्रीकृष्ण के अन्य प्रेमी है। भक्त कवियो की शैली पर 'गुरु पुष्पांजलि' और 'अनुराग वाटिका' मे इनके उच्च कोटि के सरस पद है। शुकदेव, प्रेम-शतक, प्रेम-पथिक, कवि कीर्तन आदि आपकी अन्य कविता पुस्तकें है। आपकी व्रजभाषा की प्रसिद्ध कृति 'वीर सतसई' पर सन् १९२८ में मगला-प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया है।

हरि जी बडी ही उदार प्रकृति के भावुक एव सहृदय व्यक्ति है। राष्ट्र की अनुभूतियो में भाग लेते हुए सहसा इन्होने कला और साहित्य के क्षेत्र से विरक्त हो कर हरिजन सेवा का ही व्रत ले लिया है। अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कराची-अधिवेशन के ये सभापति रहे है। आजकल दिल्ली के हरिजन सेवक सघ के सम्पूर्ण निरीक्षण का कार्य आप ही कर रहे है। कई प्राचीन ग्रन्थो का आपने सम्पादन किया है। यथा सक्षिप्त सूरसागर, ब्रजमाधुरीसार आदि। विनय पत्रिका पर लिखी हुई इनकी हरितोषणी टीका बड़ी विद्वत्तापूर्ण है। तरगिणी, साहित्य विहार, अन्तर्नाद,

भावना, पगली, प्रेमयोग, विश्वधर्म, प्रार्थना आदि आपकी प्रमुख गद्य रचनाएँ है। प्रबुद्धयामुन नाटक और छद्मयोगिनी नाटिका भी इनकी श्रेष्ठ कृत्रियाँ है। इनकी ब्रजभाषा की स्वच्छता सराहनीय है। कवि रूप में इनकी ब्रजभाषा की शुद्धता तो सराहनीय ही है पर गद्य-लेखन में भी इनकी विशेष छाप है। छोटे छोटे चमत्कार युक्त वाक्यो में यति गति का ऐसा सामञ्जस्य मिलता है कि एक सरस अभिभाषण से ध्वनित आनन्द मूर्तिमान हो जाता है। मधुर, प्राजल एवं ओजपूर्ण शब्दावली के द्वारा वे अभीष्ट प्रसंग का साकार चित्र प्रस्तुत कर देते है। अलंकार और लक्षणा के स्वाभाविक प्रयोग इनके भावात्मक गद्य की कला है।

कैसा चित्राकण किया है, चित्रकार! तेरी यह सारी चित्रकारी लोक के लिए असामयिक, अनुपयुक्त और अहितकर सिद्ध होगी। जान पडता है, तेरे रगो मे चटक ही है, स्थायित्व नही, तेरी लेखनी मे लचक ही है, वल नही। इसी कारण तू अपने प्रयासो मे असफल हुआ है।

यह कैसा चित्र खीचा है, भाई! यह तो किसी रग-महल का चित्र जान पडता है। सजावट तो खूब दिखायी है। गगनस्पर्शी गुम्वजो और कनक-कँगूरो की छटा सचमुच ही निराली और चित्ताकर्षिणी है। छज्जे क्या ही मनोमोहक है! इन झरोखो से क्या ये मदविह्वला चन्द्रमुखियाँ झाँक रही है? अच्छा! यह दरवार का दृश्य है। स्वर्ण-सिहासन पर एक सुन्दर और सुकुमार राजा विराजमान है। ये कैसे राजा है! क्षात्र तेज तो इनमे लेशमात्र भी नही। अस्तु। पीछे छत्र तना हुआ है। आस-पास चाटुकार सरदार और मन्त्री हाथ जोडे खडे है। सामने एक लावण्यवती वारागना नृत्य कर रही है। उसके कुटिल कटाक्ष और ललित हाव-भावो पर दरवारी झूम से रहे हैं। राजा साहव को तो कुछ होश ही नही। वेचारे मखमली गद्दे पर लुढके पडे है! एक हाथ मे शराव का प्याला है और दूसरे मे

फूलो की गेद। एक युवती ताबूल खिला रही है। तलवार पैरो के नीचे दवी पडी है! चित्र-कौशल तो तेरा, वास्तव मे, प्रशसनीय है, पर है यह सब घृणित और विपाक्त। इस चित्राकण का तुझे क्या पुरस्कार दिया जाय? पारितोषिक पाने के पहले अपनी कलुषित लेखनी तोड कर फेक दे, गन्दे रग उडेल दे, निर्जीव उँगलियाँ काट डाल। तुझे कुछ खीचना ही है तो ऐसा चित्र खीच। एक उजडा हुआ ग्राम बना। उसमे खँडहर और टूटी-फूटी झोपडियाँ हो। खेत और बाग झुलसे और उजडे पडे हो। एक ओर भीषण अग्नि धाँय-धाँय करती हुई जीभ लपलपा रही हो। जहाँ-तहाँ अत्याचार-पीडित पद-दलित अस्थिककाल पडे हो। भूख के मारे नन्हे-नन्हे वच्चे माताओ की गोद मे कलप रहे हो। लूट-खसोट और मार-पीट हो रही हो। सर्वत्र सर्वनाश का साम्राज्य हो। चित्रकार! क्या ऐसा चित्र तू खीच सकेगा? यदि हाँ, तो इसका पुरस्कार भी तुझे शीर्षस्थानीय दिया जायगा।

यह कैसा चित्र खीचा है, भाई! यह तो किसी मानिनी नायिका का चित्र जान पडता है। कोप-भवन खूब बनाया है! स्फटिक शिला पर एक मैली-सी सेज विछी है। मानिनी उसी पर करवट लिए पडी है। सारा शरीर धूलि-धूसरित है। केश खुले हुए है। अग पर एक भी भूषण नही, सब-के-सब इधर-उधर पडे है। एक सहेली आपको पखा झलती है और दूसरी हाथ पकडे मना रही है। पतिदेव पैर पलोट रहे है! पर श्रीमती मानिनी देवी उस वेचारे की ओर देखती तक नही! गरीव स्त्रैण पर वज्र टूट पडा है। अव मान-गढ ढहे तो कैसे? चित्र-कौशल तो तेरा, वास्तव मे, प्रशसनीय है, पर है यह सब घृणित और विपाक्त। इस चित्राकण का तुझे क्या पुरस्कार दिया जाय? पारितोषिक पाने के पहले अपनी कलुषित लेखनी तोड कर फेक दे, गन्दे रग उडेल दे, निर्जीव उँगलियाँ काट डाल। तुझे कुछ खीचना ही है तो ऐसा चित्र खीच। सवसे पहले एक शुभ्र मन्दिर वना। देख,

उसके चारो ओर अग्नि देव प्रखर ज्वालाएँ उगल रहे हो। मन्दिर मे एक प्रलयकारिणी महाशक्ति प्रतिष्ठित हो। उसके ज्वलन्त नेत्रो मे वह्निशिखा निकल रही हो। अट्टहास की मुद्रा हो। दाँतो मे बिजली-सी कौंधती हो। हृदय पर लाल फूलो का हार पडा हो। साडी भी लाल ही हो। सारा शरीर रुधिर से लथपथ हो। केश पैरो तक लहरा रहे हो। एक हाथ अनाथ भक्तो के मस्तक पर हो और दूसरे हाथ मे हो रक्त-रजित कराल कृपाण। मन्दिर मे अखण्ड तेज और प्रचण्ड पराक्रम का साम्राज्य हो। चित्रकार ! क्या ऐसा चित्र तू खीच सकेगा ? यदि हाँ, तो इसका पुरस्कार भी तुझे शीर्षस्थानीय दिया जायगा।

यह कैसा चित्र खीचा है, भाई ! यह तो किसी सुरम्य उद्यान का चित्र जान पडता है। रचना तो खूब दिखायी है ! लहलही लताओ के मण्डप और गहगहे गह्वर के ग्रीष्म-भवन सचमुच ही अनुपम है। क्यारियो की छटा कुछ निराली ही है ? गमलो की सजावट देखने-योग्य है । माधवी-निकुज क्या ही मनोमुग्धकारी है ! कही डालो पर रग-विरगे पक्षी बैठे है, तो कही पख फैलाये मोर नाच रहे हैं। इधर कुछ मनचले रसिक जन हिडोलो पर झूल रहे है। उधर उस पद्म-सरोवर मे कुछ निर्लज्ज नवयुवक, मद-विभोर ललनाओ के साथ, केलि-कल्लोल कर रहे है ? अच्छा ! यह जल-विहार का दृश्य हैं। एक दूसरे पर जल छिडक रहा है । कोई कमल की नली से पानी गुडगुडा रहा है, तो कोई अर्द्धमुकुलित कलियो को तोड-तोड कर उछाल रहा है। माधवी-निकुज मे गान-वाद्य भी हो रहा है। इस चित्र को देख कर रसिक-मण्डली अवश्य कह उठेगी कि चित्रकार ने कलम तोड दी है। तेरा चित्र-कौशल है भी प्रशसनीय, पर है यह सब घृणित और विषाक्त। इस चित्राकण का तुझे क्या पुरस्कार दिया जाय ? पारितोषिक पाने के पहले अपनी कलुषित लेखनी तोड कर फेक दे, गन्दे रग उडेल दे, निर्जीव उँगलियाँ काट डाल। तुझे कुछ खीचना ही है तो ऐसा चित्र खीच। एक

सघन वन-खड बना। वह प्रान्त पहाड़ी हो। वहाँ एक निर्मल नदी भी बहती हो। तीर के वृक्ष झुककर उसके सुनील जल से आचमन कर रहे हो। नदी के तट पर एक ओर हृष्ट-पुष्ट गाये पानी पीती हो, और दूसरी ओर छोटे-छोटे मृग-शावक नव दूर्वा टूग रहे हो। समय प्रभात का हो। प्राची को लालिमा से रग देना। इधर-उधर पक्षी उड रहे हो। कही ऋषियो और ब्रह्मचारियो का स्नान-ध्यान हो रहा हो, तो कहीं सध्या-पूजा। कही स्वाध्याय होता हो, तो कही हवन। निर्धूम अग्नि-खण्ड के समान ब्रह्म-चारियो के मुख-मण्डल पर ज्वलन्त दिप रहा हो। तपोवन ऋषियो के नेत्रों से शान्ति और आनन्द की धारा वहती हो। सारांश, सर्वत्र विश्व-प्रेम का साम्राज्य हो। चित्रकार! क्या ऐसा चित्र तू खीच सकेगा? यदि हाँ, तो इसका पुरस्कार भी तुझे शीर्षस्थानीय दिया जायगा।

रुपया

श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

'उग्र' जी का जन्म चुनार में हुआ है। आयु लगभग पचास वर्ष है। कहानी, उपन्यास और नाटक के क्षेत्र में एक क्रान्तिपूर्ण शैली के साथ 'उग्र' जी अवतरित हुए थे। यथार्थवादी दृष्टिकोण से समाज के पाखण्डमय, विकृत एवं कुत्सित अगों के आकर्षक चित्र उनकी रचनाओ मे है। दिल्ली का दलाल, चद हसीनो के खतूत, चिनगारियाँ, इन्द्र-धनुष, बुधुआ की बेटी आप के उपन्यास और गल्पसंग्रह प्रकाशित हो चुके है । महात्मा ईसा, चुम्बन, चार बेचारे, अन्नदाता, माधव महाराज महान आपके प्रमुख नाटक एव प्रहसन है ।

उग्र जी की भाषा शैली बड़ी सरस, व्यग्यपूर्ण और पभावशालिनी है।

मै लडको के लडकपन का खिलौना हूँ, मिठाई हूँ। मै जवानो की जवानी की जान हूँ, मस्ती हूँ। मै बूढो की बुढौती की लकडी हूँ, सहारा हूँ। मै रुपया हूँ।

मनुष्य मेरा गुलाम है। मै उसे हजार नाच नचा मकता हूँ, नचा चुका हूँ, नचा रहा हूँ। दुनियां मुझसे दबती है। मै उसे पलट सकता हूँ, उलट चुका हूँ, उलट रहा हूँ। प्रकृति मेरी वशवर्त्तिनी है। मै उसे वनाता हूँ, विगाडता हूँ, तोडता हूँ, मोडता हूँ। मै रुपया हूँ।

विशाल विश्व मे यदि कोई ईश्वर हो, तो मैं हूँ, धर्म हो, तो मैं हूँ,

प्रेम हो, तो मै हूँ। मै सत्य हूँ, मै शिव हूँ, मै सुन्दर हूँ। मै सत् हूँ, मै चित हूँ, मै आनन्द हूँ। परलोक मै हूँ, लोक मै हूँ, हर्ष मै हूँ, शोक मै हूँ, क्षमता मै हूँ, ममता मै हूँ। मै रुपया हूँ।

मेरी झनझनाहट मे जो अलौकिक मधुरिमा है वह वीणापाणि की वीणा मे कहाँ ? लक्ष्मीपति के पाचजन्य मे कहाँ ? कोकिल कल-काकली मे कहाँ ? कामिनी के कोमल कठ मे कहाँ ? डमरू वाले के डमरू मे कहाँ ? मृदग मुरचग मे कहाँ ? सितार जलतरग मे कहाँ ? यहाँ कहाँ ? वहाँ कहाँ ? मै सप्त स्वरो से ऊपर अष्टम स्वर हूँ, परम मधुर हूँ। मै रुपया हूँ।

गीता के गायको, चण्डी सप्तशती के पाठको, भगवत के भक्तो, सत्यनारायण कथा के प्रेमियो, रामायण के अनुरागियो, महाभारत के मानने वालो—मेरा गीत गाओ, मेरा पाठ पढो, मेरे भक्त बनो, मेरी कथा सुनो, मुझ मे अनुराग करो, मुझे मानो, मेरी शरण आओ। तारनतरन मै हूँ, भव-भय-हरण मै हूँ, अशरण-शरण मे हूँ, जन दुःख-हरण मै हूँ, धवल-वरण मै हूँ, मगलकरण मै हूँ, पुण्यचरण मै हूँ। मै रुपया हूँ।

मुझको आँख दिखा कर, मुझे ठुकरा कर, मुझसे विद्रोह कर कोई बच सकता है ?—कोई नही।

जमीदार मै हूँ, राजा मै हूँ, बादशाह मै हूँ, बादशाहो का बादशाह मै हूँ, मै ईश्वर हूँ। मै रुपया हूँ।

लका—सीता की रुष्टि तुष्टि से नही, मेरी रुष्टि तुष्टि से जली थी; मै विभीषण पर प्रसन्न था। कौरव—द्रौपदी के कोप से नही, मेरे कोप से नष्ट हुए थे, मै पाडवो पर प्रसन्न था। जर्मनी—ब्रिटेन या अमेरिका की धूर्तता से नही मेरी धूर्तता से पराजित हुआ, मै ब्रिटेन पर प्रसन्न हूँ।

ठाकुर जी बोलते नही, मै बोलता हूँ—उनसे बडा हूँ। ठाकुर जी चलते नही, मै चलता हूँ—उनमे मेरी अधिक साख है। देवताओ मे वह आकर्षण

नही, जो मुझमे है। ईश्वर मे वह तेज नही, वह शक्ति नही, जो मुझमे है। यह युग तर्क का है, उदाहरण का है, प्रत्यक्षवाद का है, स्वय प्रभुता का है। मै प्रत्यक्ष हूँ, सद्य फल का दानी हूँ, स्वय प्रभु हूँ, आकर्षक हूँ—ईश्वर हूँ, ईश्वर से बडा हूँ। मै रुपया हूँ।

मुझसे वरदान ले कर पाप करो, तुम देवताओ से पूजे जाओगे। मुझसे वरदान ले कर एक–दो नही, सात खून करो–साफ बच जाओगे। साम्राज्य को साम्राज्य से भिडा दो। मनुष्यता की बढी हुई खेती को बेरहमी से कटवा डालो—जलवा डालो। स्त्रियो की मर्यादा को—पैसे मे दो सेर के हिसाब से—दिन मे दस वार खरीदो और बेच डालो। ससार को विधवाओ, बच्चो, बूढो और अपाहिजो की "हाय" से भर दो। भूकम्प उठा दो, प्रलय कर दो—जो चाहे सो कर दो, मगर मुझसे वरदान लेकर। मैं सर्व शक्तिमान् हूँ। मै रुपया हूँ—

"सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज।"

ताज

डा० रघुवीर सिंह एम० ए०, डी० लिट०

सीतामऊ (मध्यभारत) के महाराजकुमार डा० रघुवीर सिंह बड़े विद्याव्यसनी एवं साहित्यप्रेमी हैं। छात्रावस्था से ही वे लेख लिखा करते थे। इतिहास विषय पर उनके गम्भीर अध्ययन और विवेचन को प्रगट करने वाले ग्रन्थ 'मध्यकालीन भारत का इतिहास' और 'मालवा में युगान्तर' हैं। 'सप्त द्वीप' और 'शेष स्मृतियाँ' आपके भावमय गद्य की निदर्शन हैं। भावावेश की व्यंजना प्रधान शैली में इनके भावात्मक निबंध बड़े ही प्रभावोत्पादक हैं।

मनुष्य को स्वय पर गर्व है। वह स्वय को जगदीश्वर की अत्युत्तम तथा सर्वश्रेष्ठ कृति समझता है। वह अपने व्यक्तित्व को चिरस्थायी बनाया चाहता है। मनुष्य-जाति का इतिहास क्या है? उसके सारे प्रयत्नो का केवल एक ही उद्देश्य है। चिरकाल से मनुष्य यही प्रयत्न कर रहा है कि किसी प्रकार वह उस अप्राप्य अमृत को प्राप्त करे, जिसे पीकर वह अमर हो जाय, कितु अभी तक उस अमृत का पता नही लगा। यही कारण है कि जब मनुप्य को प्रतिदिन निकटतम आती हुई रहस्यपूर्ण मृत्यु की याद आ जाती है, तब उसका हृदय तडपने लगता है। भविष्य मे आने वाले अत के तथा उसके अनतर अपने व्यक्तित्व के ही नही, सर्वस्व के विनष्ट होने के विचार-मात्र से ही मनुप्य का सारा शरीर सिहर उठता है। मनुष्य

चाहता है कि किसी प्रकार वह इस अप्रिय सत्य को भूल जाय और उसे ही भुलाने के लिए, अपनी स्मृति से, अपने मस्तिष्क से उसे निकाल बाहर करने ही के लिए, कई बार मनुष्य सुख-सागर मे मग्न होने की चेष्टा करता है। कई व्यक्तियो का हृदय तो इस विचार-मात्र से ही विकल हो उठता है कि समय के उस भयानक प्रवाह मे वे स्वय ही नही, किंतु उनकी समग्र वस्तुएँ, स्मृतियाँ, स्मृति-चिह्न आदि सब कुछ बह जायँगे, इस ससार मे तब उनके सासारिक-जीवन का चिन्ह-मात्र भी न रहेगा और उनको याद करने वाला भी कोई न मिलेगा। ऐसे मनुष्य इस भौतिक ससार मे अपनी स्मृतियाँ—अमिट-स्मृतियाँ—छोड जाने को विकल हो उठते है। वे जानते है कि उनका अत अवश्यभावी है, किंतु सोचते है कि सभव है उनकी स्मृतियाँ ससार मे रह जायँ। पिरेमिड, स्फिक, बडे-बडे मकबरे, कीर्तिस्तभ, कीलियाँ, विजयद्वार, विजय-तोरण आदि कृतियाँ मनुष्य की इसी इच्छा के फल है। एक तरह से देखा जाय तो इतिहास भी, अपनी स्मृति को चिर-स्थायी बनाने की मानवीय इच्छा का एक प्रबल प्रयत्न है। यो अपनी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए मनुष्य ने भिन्न-भिन्न प्रयत्न किए, किसी ने एक मार्ग का अवलबन किया, किसी ने दूसरे का। कई एक विफल हुए, अनेको के ऐसे प्रयत्नो का आज मानव-समाज की स्मृति पर चिन्ह तक विद्यमान नही है। बहुतो के ऐसे प्रयत्नो के खँडहर आज भी सारे ससार मे यत्र-तत्र दिखाई देते है। वे आज भी मूक-भाव से मनुष्य की इस इच्छा को देखकर हँसते है तथा रोते है। मनुष्य की विफलता पर तथा अपनी दुर्दशा पर वे आँसू गिराते है। परतु यह देखकर कि अभी तक मनुष्य अपनी विफलता को नही जान पाया, अभी तक उसकी वही इच्छा, उसकी वही आशा उसका पीछा नही छोडती है, मनुष्य अभी तक उन्ही के चगुल मे फँसा हुआ है, वे मूक-भाव से मनुष्य की इस अद्भुत मृग-तृष्णा पर विक्षिप्त कर देने वाला अट्टहास करते है।

परतु मनुष्य का मस्तिष्क विधाता की एक अद्वितीय कृति है। यद्यपि समय के सामने किसी की नही चलती, तथापि कई एक मस्तिष्को ने ऐसी खूबी से काम किया है, उन्होने ऐसी चाले चली है कि वे समय के उस प्रलयकारी भीषण प्रवाह को रोकने मे समर्थ हुए है। उन्होने समय को अनुपम सौंदर्य के अदृश्य पाश मे बाँध डाला, उसे अपनी कृतियो की अनोखी छटा दिखा कर लुभाया है, यो उसे भुलावा दे कर कई बार मनुष्य अपनी स्मृति को ही नही, किंतु अपने भावो के स्मारको को भी चिरस्थायी बना सका है। ताजमहल भी मानव-मस्तिष्क की ऐसी ही अद्वितीय सफलता का एक अद्भुत उदाहरण है।

* * * *

वह अधकारमयी रात्रि थी। सारे विश्व पर घोर अधकार छाया हुआ था, तो भी जग सोया न था। ससार का ताज, भारतीय साम्राज्य का वह सितारा, भारतसम्राट् के हृदय-कुमुद का वह चाँद आज सर्वदा के लिए नष्ट होने को था। शिशु को जन्म देने मे माता की जान पर आ बनी थी। अतिम घडियाँ थी। उन सुखमय दिनो का, प्रेम तथा सुख से पूर्ण छलकते हुए उस काल का, अब अत होने वाला था। ससार कितना अचिरस्थायी है!

वह टिमटिमाता हुआ दीपक, भारत-सम्राट् के स्नेह का वह जलता हुआ चिराग, बुझ रहा था। अब भी स्नेह बहुत था, किंतु अकाल-काल का झोका आया। वह झिलमिलाती हुई लौ उसे सहन नही कर सकी। धीरे-धीरे प्रकाश कम हो रहा था, दुर्दिन की काली घटाएँ उस अँधेरी रात्रि के अँधकार को अधिक कालिमामय बना रही थी, आशा-प्रकाश की अतिम ज्योति-रेखाएँ निराशा के उस अँधकार मे विलीन हो रही थी। और तब . सब अँधेरा ही अँधेरा था।

इस सासारिक यात्रा की अपनी सहचरी प्राण-प्रिया से अतिम भेट

करने शाहजहाँ आया। जीवन-दीपक वुझ रहा था, फिर भी अपने प्रेमी को, अपने जीवन-सर्वस्व को देखकर पुन एक बार लौ वढी, वुझने से पहले की ज्योति हुई, मुमताज के नेत्र खुले। अतिम मिलाप था। उन अतिम घडियो मे, उन आँखो द्वारा क्या-क्या मौनालाप हुआ होगा, उन दोनो प्रेमियो के हृदयो मे कितनी उथल-पुथल मची होगी, उसका कौन वर्णन कर सकता है? प्रेमाग्नि से धधकते हुए उन हृदयो की वाते लेखक की यह कठोर लेखनी काली स्याही से पुते हुए मुँह से नही लिख सकती।

अतिम क्षण थे, सर्वदा के लिए वियोग हो रहा था, देखती आँखो शाहजहाँ का सर्वस्व लुट रहा था और वह भारत-सम्राट् हताश हाथ पर हाथ धरे बैठा किस्मत को रो रहा था। सिहासनारूढ हुए कोई तीन वर्ष भी नही वीते थे कि उसकी प्रियतमा इस लोक मे विदा होने की तैयारी कर रही थी। शाहजहाँ की समस्त आशाओ पर, उसकी सारी उमगो पर, पाला पड रहा था। क्या-क्या आशाएँ थी, क्या-क्या अरमान थे? जब समय आया, उनके पूर्ण होने की आशा थी, तभी एकाएक शाहजहाँ को उसकी जीवन-सगिनी छोड ने दिया। ज्योही सुख-मदिरा का प्याला ओठो को लगाया कि वह प्याला गिर पडा, चूर-चूर हो गया और वह सुख-मदिरा मिट्टी मे मिल गई, पृथ्वीतल मे समा गई, सर्वदा के लिए अदृष्ट हो गई।

हाय! अत हो गया, सर्वस्व लुट गया। परम प्रेमी, जीवन का एकमात्र साथी सर्वदा के लिए छोड कर चल वसा। भारत-सम्राट् शाहजहाँ की प्रेयसी, सम्राज्ञी मुमताजमहल सदा के लिए इस लोक से विदा हो गई। शाहजहाँ भारत का सम्राट् था, जहाँ का शाह था, परतु वह भी अपनी प्रेयसी को जाने से नही रोक सका। दार्शनिक कहते है, जीवन एक वुदवुदा है, भ्रमण करती हुई आत्मा के ठहरने की एक धर्मशाला मात्र है। वे यह भी कहते है कि इस जीवन का सग तथा वियोग क्या है, एक प्रवाह मे

साथ बहते हुए लकडी के टुकडो के साथ तथा विलग होने के समान है।
परतु क्या ये विचार एक सतप्त-हृदय को शात कर सकते है? क्या ये भावनाएँ चिरकाल की विरहाग्नि मे जलते हुए हृदय को सात्वना प्रदान कर सकती है? सासारिक जीवन की व्यथाओ से दूर बैठा हुआ, सासारिक जीवन-सग्राम का एक तटस्थ दर्शक भले ही कुछ भी कहे, किंतु जीवन के इस भीषण सग्राम मे युद्ध करते हुए सासारिक घटनाओं के कठोर थपेडे खाते हुए, हृदयो की क्या दशा होती है, वह एक भुक्तभोगी ही कह सकता है।

* * * *

वह चली गई, सर्वदा के लिए चली गई। अपने रोते हुए प्रेमी को, अपने जीवन-सर्वस्व को, अपने बिलखते हुए प्यारे बच्चो को तथा समग्र दुखी ससार को छोड कर, उस अँधियारी रात मे न जाने वह कहाँ चली गई? चिरकाल का वियोग था। शाहजहाँ की आँख से एक आँसू ढलका, उस सतप्त हृदय से एक आह निकली।

वह सुदर शरीर पृथ्वी की भेट हो गया, अगर कुछ शेष रहा तो उसकी वह सुखप्रद स्मृति तथा उस स्मृति पर, उसके उस चिर-वियोग पर, आहे तथा आँसू। ससार लुट गया और उसे पता भी न लगा। ससार की वह सुदर मूर्त्ति, मृत्यु के अदृश्य क्रूर हाथो चूर्ण हो गई। और उस मूर्ति के वे भग्नावशेष! जगन्माता पृथ्वी ने उन्हे अपने अचल मे समेट लिया।

शाहजहाँ के वे आँसू तथा वे आहे विफल न हुई। उन तप्त आँखो तथा उस धधकते हुए हृदय से निकल कर वे इस बाह्य जगत् मे आए थे। वे भी समय के साथ सर्द होने लगे। समय के ठढे झोको के थपेडे खाकर उन्होने एक ऐसा सुदर स्वरूप धारण किया कि आज भी न जाने कितने आँसू ढलक पडते है और न जाने कितने हृदयो मे हलचल मच जाती है। अपनी प्रेयसी के वियोग पर बहाये गये शाहजहाँ के ये आँसू चिरस्थायी हो गये।

सब कुछ समाप्त हो गया था। किंतु अब भी कुछ आशा शेष रही थी। शाहजहाँ का सर्वस्व लुट गया था, तो भी उस स्तब्ध रात्रि मे अपनी मृत्यून्मुख प्रियतमा के प्रति उस अंतिम भेंट के समय किये गये अपने प्रण को वह नही भूला था। उसने सोचा कि अपनी प्रेयसी की यादगार मे, भारत के ही नही, संसार के उस चाँद की उन शुष्क हड्डियो पर एक ऐसी कब्र बनावे कि वह संसार के मकबरो का ताज हो। शाहजहाँ को सूझी कि अपनी प्रेयसी की स्मृति को तथा उसके प्रति अपने अगाध शुद्ध प्रेम को स्वच्छ, श्वेत स्फटिक के सुचारु स्वरूप मे व्यक्त करे।

धीरे-धीरे भारत की उस पवित्र महानदी यमुना के तट पर एक मकबरा बनने लगा। पहले लाल पत्थर का एक चबूतरा बनाया गया, उस पर सफेद संगमरमर का ऊँचा चबूतरा निर्माण किया गया, जिसके चारो कोनो पर चार मीनार बनाए गए जो बेतार के तार से, चारो दिशाओ मे उस सम्राज्ञी की मृत्यु का समाचार सुना रहे है तथा उसका यशोगान करते है। मध्य मे शनैः शनैः मकबरा उठा। यह मकबरा भी उस श्वेत वर्णवाली सम्राज्ञी के समान श्वेत तथा उसी के समान सौंदर्य मे अनुपम तथा अद्वितीय था। अंत में उस मकबरे को एक अतीव सुंदर किंतु महान् गुम्बज का ताज पहनाया गया।

पाठको! उस सुंदर मकबरे का वर्णन पार्थिव जिह्वा नही कर सकती, फिर बेचारी जड लेखनी का क्या कहना? अनेक शताब्दियाँ बीत गई। भारत मे अनेकानेक साम्राज्यो का उत्थान और पतन हुआ। भारत की वह सुंदर कला तथा महान् समाधि के निर्माणकर्त्ता भी समय के इस अनंत गर्भ में न जाने कहाँ विलीन हो गये, परंतु आज भी वह मकबरा खडा हुआ, अपने सौंदर्य से संसार को लुभा रहा है। वह शाहजहाँ की उस महान् साधना का, अपनी प्रेमिका के प्रति अनन्य तथा अगाध प्रेम का, फल है। वह कितना सुंदर है? आँखे ही देख सकती है, हृदय ही उसकी सुंदरता

का अनुभव कर सकता है। ससार उसकी सुदरता को देख कर स्तब्ध है। शाहजहाँ ने अपनी मृत-प्रियतमा की समाधि पर अपने प्रेम की अजलि अर्पण की तथा भारत ने अपने महान् शिल्पकारो और चतुर कारीगरो के हाथो शुद्ध प्रेम की इस अनुपम और अद्वितीय समाधि को निर्माण करवा कर पवित्र प्रेम की वेदी पर जो अपूर्व श्रद्धाजलि अर्पित की उसका सानी इस भूतल पर खोजे नही मिलता।

* * * *

वरसो के परिश्रम के वाद अत मे मुमताज का वह मकबरा पूर्ण हुआ। शाहजहाँ की वर्षों की साध पूरी हुई। एक महान् यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। जब इस मकबरे के पूर्ण होने पर शाहजहाँ पूरे समारोह के साथ उसे देखने गया होगा, आगरे के लिए वह दिन कितना गौरव-पूर्ण हुआ होगा। इतिहासकारो ने उस दिन का—भारत की ही नही, ससार की शिल्पकला के इतिहास के उस महान् दिवस का—वर्णन कही नही किया है। कितने सहस्र नर-नारी आबाल-वृद्ध उस दिन उस अपूर्व मकबरे के—ससार की उस महान् कृति के—दर्शनार्थ एकत्र हुए होगे? उस दिन मकबरे को देखकर भिन्न-भिन्न दर्शको के हृदयो मे कितने विभिन्न भाव उत्पन्न हुए होगे? किसी को इस महान् कृति की पूर्ति पर हर्ष हुआ होगा, किसी ने यह देख कर गौरव का अनुभव किया होगा कि उनके देश मे एक ऐसी वस्तु का निर्माण हुआ है, जिसकी तुलना करने के लिए ससार मे कदाचित् ही दूसरी कोई वस्तु मिले, कई एक उस मकबरे की छबि को देखकर मुग्ध हो गये होगे, न जाने कितने चित्रकार उस सुदर कृति को अकित करने के लिए ही दौड पडे होगे, न जाने कितने कवियो के मस्तिष्को मे क्या-क्या अनोखी सूझे पैदा हुई होगी।

परतु सब दर्शको मे से एक दर्शक ऐसा भी था, जिसके हृदय मे भिन्न-भिन्न विपरीत भावो का घोर युद्ध हुआ था। दो आँखे ऐसी भी थी, जो

वाह्य सुदरता को चीरती हुई, एक टक उस कब्र पर ठहरती थी। वह दर्शक था शाहजहाँ, वे आँखे थी शाहजहाँ की आँखे। जिस समय शाहजहाँ ने ताज के उस अद्वितीय दरवाजे पर खडे हो कर उस समाधि को देखा होगा, उस समय उसके हृदय की क्या दशा हुई होगी, सो वर्णन करना अतीव कठिन है। उसके हृदय मे शाति हुई होगी कि वह अपनी प्रियतमा के प्रति किये गये अपने प्रण को पूर्ण कर सका। उसको गोरव का भी अनुभव हो रहा होगा कि उसकी प्रियतमा की कब्र—अपनी उस जीवन-सगिनी की यादगार—ऐसी वनी कि उसका सानी शायद ही मिले। किंतु उस जीवित मुमताज के स्थान पर, अपनी जीवन-सगिनी की शुष्क हड्डियो पर यह कब्र—वह कब्र कैसी ही सुदर क्यो न हो—पाकर शाहजहां के हृदय मे जलती हुई चिरवियोग की अग्नि क्या शात हो गई होगी? क्या श्वेत सर्द पत्थर का वह सुदर मकवरा मुमताज की मृत्यु के कारण हुई कमी को पूर्ण कर सकता था? मकवरे को देखकर शाहजहाँ की आँखो के सम्मुख उसका सारा जीवन, जव मुमताज के साथ वह सुखपूर्वक रहता था, सिनेमा की फिल्म के समान दिखाई दिया होगा। प्रियतमा मुमताज को स्मृति पर पुन आँसू ढलके होगे, पुन सुप्त-स्मृतियाँ जग उठी होगी और पुन चोट खाये हुए उस हृदय के वे पुराने घाव हरे हो गये होगे।

पाठको! जब आज भी कई एक दर्शक उस पवित्र समाधिको देखकर दो आँसू वहाये विना नही रह सकते, तब आप ही स्वय विचार कर सकते है कि शाहजहाँ की क्या दशा हुई होगी! अपने जीवन मे वहुत कुछ सुख प्राप्त हो चुका था, और रहे-सहे सुख की प्राप्ति होने को थी, उस सुख-पूर्ण जीवन का मध्याह्न होने वाला ही था कि उस जीवन-सूर्य को ग्रहण लग गया ओर ऐसा लगा कि वह जीवन-सूर्य अस्त होने तक ग्रसित ही रहा। ताजमहल उस ग्रसित-सूर्य से निकली हुई अद्भुत सुदरतापूर्ण तेजोमयी लपटो का एक घनीभूत सुदर पुज है, उस ग्रसित सूर्य की एक अनोखी स्मृति है।

शताब्दियाँ बीत गई। शाहजहाँ कई बार उस ताजमहल को देखकर रोया होगा। मरते समय भी वह उस सुन्दर मुम्मन बुर्ज मे शय्या पर पडा ताजमहल को देख रहा था। और आज भी न जाने कितने मनुष्य उस अद्वितीय समाधि के उद्यान मे बैठे घटो उसे निहारा करते है। न जाने कितने उस उद्यान मे बैठे प्रेम-पूर्ण जीवन के नष्ट होने की उस स्मृति पर, अचिरस्थायी मानव-जीवन की उस करुण-कथा पर, रोते है। न जाने कितने यात्री दूर-दूर देशो से बडे-बडे भयकर समुद्र पार कर उस समाधि को देखने के लिए खिचे चले आते है। वे कितनी उमगो से आते है, और उसासे भरते हुए ही चले जाते है। कितने हर्ष से आते है, किंतु दो आँसू बहाकर ही जाते है। प्रकृति भी प्रतिवर्ष चार मास तक इस अद्वितीय प्रेम के भग होने की करुण-स्मृति पर रोती है।

मनुष्य-जीवन की—मनुष्य के उस दु खपूर्ण जीवन की—जहाँ मनुष्य की कई वासनाएँ अतृप्त रह जाती है, जहाँ मनुष्य के प्रेम-बधन बँधने भी नही पाते कि काल के कराल हाथो पडकर टूट जाते है—मनुष्य के उस उस करुण जीवन की स्मृति—उसकी अतृप्त वासनाओ तथा खिलते हुए प्रेम-पुष्प की वह समाधि—आज भी यमुना के तीर पर खडी है। शाहजहाँ का वह साम्राज्य, उसका वह तख्त ताऊस, उसका वह महान् घराना, शाही जमाने का वह गौरव, आज सब कुछ विलीन हो गया—समय के कठोर झोको मे पड कर वे सब आज नष्ट हो गये। ताजमहल का वह वैभव, उसमे जडे हुए वे रत्न भी न जाने कहाँ चले गये, किन्तु आज भी ताजमहल अपनी सुदरता से समय को लुभाकर उसे भुलावा दे रहा है और यो मानव-जीवन की उस करुण-कथा को चिरस्थायी बनाये हुए है। वैभव-विहीन ताज का यह विधुर स्वरूप उसे अधिक सोहता है।

आज भी उन सफेद पत्थरो से, आवाज आती है—"मै भूला नही हूँ।" आज भी उन पत्थरो मे न जाने किस मार्ग से होती हुई पानी की एक

बूंद प्रति वर्ष उस सम्राज्ञी की कब्र पर टपक पडती है, वे कठोर पत्थर भी प्रति वर्ष उस सुदर सम्राज्ञी की मृत्यु को याद कर, मनुष्य की उस करुण-कथा को देख, पिघल जाते है और उन पत्थरो मे से एक आँसू ढलक पडता है। आज भी यमुना नदी की धारा समाधि को चूमती हुई उस भग्न मानव जीवन की करुण कथा अपने प्रेमी सागर को सुनाने के लिये दौड पडती है। आज भी उस भग्न हृदय की कथा यादकर कभी-कभी यमुना का हृदय-प्रदेश उमड पडता है और उसके हृदय मे भी आँसुओ की बाढ आ जाती है ।

उन श्वेत पत्थरो से आवाज आती है—"आज भी मुझे उसकी स्मृति है।" आज भी उस खिलते हुए प्रेम-पुष्प का सौरभ—उस प्रेम-पुष्प का, जो अकाल मे ही डठल मे टूट पडा—उन पत्थरो मे रम रहा है। वह टूटा हुआ पुष्प सूख गया, परतु उस सुन्दर पुष्प की आत्मा विलीन हो गई, अनत मे अतर्हित हो गई। अपने अनत के पथ पर अग्रसर होती हुई वह आत्मा उस स्खलित पुष्प को छोड कर चली गई, केवल पत्थर की उस सुदर किंतु त्यक्त समाधि मे उसकी स्मृति विद्यमान है। यो शाहजहाँ ने उस निराकार मृत्यु को अक्षय सौदर्यपूर्ण स्वरूप प्रदान किया। मनुष्य के अचिरस्थायी प्रेम को, प्रेमाग्नि की उस धधकती हुई अग्नि को, चिरस्थायी बनाया।

रेशमी टाई

डा० रामकुमार वर्मा, एम० ए, पी-एच० डी०

डा० रामकुमार जी का जन्म सं० १९६२ में हुआ है। प्रयाग विश्वविद्यालय से सन् १९२९ में प्रथम श्रेणी मे हिन्दी की एम० ए० परीक्षा इन्होंने उत्तीर्ण की है। तदपुरांत उक्त विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में वे अध्यापक नियुक्त हुए और आजकल रीडर के पद पर योग्यतापूर्ण कार्य कर रहे हैं। सन् १९४० में नागपुर विश्वविद्यालय से इन्होने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' नामक ग्रन्थ पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। छात्रावस्था से ही काव्य प्रणयन में वर्मा जी की रुचि रही है। 'चित्ररेखा,' 'निशीथ' और 'रूपराशि' आदि इनके प्रमुख काव्य हैं। 'चित्ररेखा' पर देव-पुरस्कार भी इन्हें प्राप्त हुआ था। 'कबीर का रहस्यवाद' इनकी आलोचनात्मक कृति है।

कवि के रूप में वर्मा जी वेदना और निराशावादी हैं। जन्म में मृत्यु, वसत में ग्रीष्म और उषा में संध्या का चिंतनमय दृश्य ये देखा करते हैं। अनुभूति की अपेक्षा कल्पना का तत्व इनमें अधिक है। पिछले कई वर्षों से वर्मा जी ने एकांकी नाट्य रचना में भी अपनी प्रतिभा का उन्मेष किया है। 'विक्रमादित्य', 'रेशमी टाई', 'सप्तकिरण', 'कौमुदी महोत्सव' आदि इनके प्रसिद्ध एकांकी संग्रह हैं। प्रायः ये एकाकी समस्याप्रधान हैं। संलाप का सौंदर्य और मनोवैज्ञानिक संघर्ष इनकी विशेषताएँ हैं। एकांकी के विकास में वर्मा जी का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके एकांकी बड़ी सफलता के साथ समय समय पर अभिनीत हुए हैं।

पात्र-परिचय

१ नवीनचन्द्र राय—इश्योरेंस कपनी का एजेण्ट और साम्यवाद का विश्वासी। आयु ३० वर्ष
२ लीला—उसकी सुशीला स्त्री। आयु २२ वर्ष
३ सुधालता—स्वयसेविका। आयु १८ वर्ष।
४ चन्दन—नवीनचन्द्र का नौकर। आयु ४५ वर्ष

एक सुसज्जित कमरा। ड्राइग और ड्रेसिंग रूम जैसे मिल गए हो। एक ओर कार्ल मार्क्स और दूसरी ओर ग्रेटा गार्बो के विशाल चित्र। वगल मे एक वडा शीशा। कमरे के एक कोने में एक टेबुल है, जिस पर कुछ पुस्तके और कागज रखे हुए है। दूसरी ओर एक आलमारी है, जिसमे नीचे दो दराज है। बीचो-बीच एक टेबुल है, जिस पर फूलदान है और जिसमे गुलदस्ता लगा हुआ है। आमने-सामने दो कुर्सियाँ पडी है। जमीन पर मखमली फर्श बिछा हुआ है। दीवाल पर एक घडी, जिसमे ८ वजकर १८ मिनट हो गए है। वगल मे कैलेंडर।

नवीनचन्द्र नैपथ्य की ओर बगल मे दरवाजे तक वढ कर वडे ध्यान से देख रहा है।

नवीन—(दरवाजे की ओर धीरे-धीरे बढकर देखता हुआ) इतनी ठड मे स्नान ! पूजा ! (एकटक देखते हुए रुककर) फेथफुल वाइफ स्वीट लीला ! (फिर रुककर लौटते हुए अपनी ओर देख कर) और मै ? (वीच मे रखी हुई टेवुल के समीप आता है। दराज खोल कर एक वडल निकालता है। उसे हाथो से तौलता है, फिर छोटे दराज से कैंची निकाल कर वडल की रस्सी काट कर उसे खोलता है। दो रेशमी टाई निकालते है। एक टाई को उलट-पलट कर गौर से देखता है। हाथ में लेकर झुलाकर,

कुछ ऊपर उठा कर देखते हुए) ब्यूटीफुल ! (दूसरे हाथ में लेकर) एस्प्लेनडिड ! (चित्र की ओर देख कर) लाइक दैट अव् ग्रेटा गार्वो ! शैल आइ ट्राइ ?[१] (शीशे के समीप जा ओठ से सीटी बजाता हुआ टाई पहनता है। हेराल्ड वाइल्ड का 'आई हीयर यू कालिंग मी' गाना गुनगुनाते हुए टाई की नाट् बाँधता है। रुककर खिडकी के पास जाते हुए) अरे चन्दन, ओ चन्दन ! खिडकी से दाहिनी ओर झाँकते हुए) अरे, आज चा-वा लाएगा या नही ?

च०—(नेपथ्य से) लाया हुजूर।

न०—(टाई की नाट् ठीक करते हुए) इन कम्बख्तो का सूरज नौ बजे निकलता है। अभी तक चा तैयार नही हुई। रासकल्स, ईडियट्स !

(चन्दन का चा लेकर प्रवेश)

न०—(टाई पर हाथ फेरते हुए) क्यो रे, जब तक मैं चा न मँगाऊँ, तब तक आराम से वैठा रहता है—हाथ पर हाथ धरे ?

च०—(बीच वाली टेबुल पर ट्रे रखते हुए) हुजूर, टोस्ट मे मक्खन लगा रहा था।

न०—और मैं तेरे सिर पर चपत लगाऊँ तो ? ईडियट, (घडी की ओर देखते हुए) आठ बज गए, जानता है ?

च०—हुजूर, आज दिन मालूम नही पडा। खूब कुहरा पड रहा था, हुजूर।

न०—तेरी अक्ल पर ? बदमाश, चा किस लेबिल की डाली ? पीले की या लाल की ?

च०—हुजूर, लाल की।

---

१ ग्रेटा गार्वो की टाई की तरह ! मैं पहनूँ ?

न०—हूँ, (शान्त होकर) उनकी पूजा खत्म हो गई ?

ली०—(आते हुए) हो गई, आ रही हूँ । सुवह से यह कैसा गुस्सा ?

न०—(कुर्सी से उठते हुए) गुस्सा न आए ? आठ वज जाते है, और चा नही आती ! (झल्लाकर सिगरेट जलाता है)

ली०—(सन्तोष देते हुए) सचमुच नाराजी की वात है ! मै कल से और भी सुबह उठूगी।

न०—तुम क्यो उठोगी ? ये नौकर किसलिए है ?

ली०—(मुस्कुराते हुए कुर्सी पर बैठ कर) गुस्सा दिलाने के लिए। इस ठड मे गर्मी लाने के लिए !

न०—(कुछ मुस्कुरा कर, चन्दन की ओर देखते हुए) ईडियट्, जाओ, वाहर वैठो। (चन्दन चला जाता है।)

ली०—(शान्ति से) इतने नाराज होकर वाहर जाओगे तो फिर केस कैसे मिलेगे ? इसी महीने के आखीर तक तो आपको २५ हजार इश्योर करने है। आज तारीख १८ हो चुकी । (कैलेडर पर दृष्टि)

न०—(झल्ला कर) ऐसी हालत मे कर चुका। (चा की केटली उठाता है।)

ली०—नही लाओ, मै चा बनाऊँ। (केटली लेती है।) तुम तो पच्चीस क्या, पचास हजार कर लोगे। (प्याले मे चा डालते हुए) अव लोग इश्योरेस की जरूरत समझने लगे है। १०-१५ वरस पहले तो लोग समझते थे कि इश्योरेन्स अपशकुन है। मरने की वात अभी से सोचते है। (चा का रग देखते हुए) देखो, कितना अच्छा कलर है !

न०—(प्याले को देख कर) हूँ।

ली०—सचमुच इस ठड मे चा एक चीज है। कपनी वालो को ठड मे

चा की कीमत बढा देनी चाहिए ? क्यो ?

न०—कही अपनी यह राय किसी कंपनी को भेज भी न देना।

ली०—तो मुफ्त मे तो भेजूंगी नही। चीनी ?

न०—डेढ चम्मच।

ली०—(डेढ चम्मच चीनी डाल कर दूध मिलाने से पहले) देखो, चा का रग! तुम्हारी रेशमी टाई से मिलता-जुलता। (रुक कर प्रश्न के स्वर मे) क्या बाहर जाने को तैयार हो गए ? (दूध डालती है।)

न०—नही तो।

ली०—यह सुबह से टाई पहन रखी है!

न०—(चा को ओठो से लगाते हुए) यो ही देखना चाहता था, कैसी लगती है। नयी है—कल ही लाया हूँ!

ली०—(चा पीते हुए प्रशसा के स्वरो मे) अच्छी लगती है!

न०—(उमग से) अच्छी ? बहुत अच्छी। ग्रेटा गार्बो जैसी देखो .. (चित्र की ओर सकेत करता है।)

ली०—(ग्रेटा के चित्र की ओर देख कर) सचमुच इस समय आप ग्रेटा ही मालूम हो रहे हैं।

न०—(झेप कर) हिश्, और सुनो। मुफ्त—विल्कुल मुफ्त!

ली०—कैसे ? क्या सिगरेट के कूपन-प्रेजेण्ट मे ?

न०—(सिर हिला कर) ऊँ-हूँ!

ली०—फिर किसी ने प्रेजेण्ट की होगी ?

न०—(चा का घूंट ले कर) ऊँ-हूँ!

ली०—अच्छा, मै समझ गई। (रुक कर) दद्रुगजकेसरी का उपहार!

न०—(हँस कर) पागल!

ली०—फिर क्लीयरेस सेल मे!

न०—फेल।

ली०—(हँस कर) अच्छा, इस वार ठीक वतलाऊँ। एक रुपये मे १४४ चीजो के साथ डमी वाच और टाई।

न०—(मुस्कुरा कर) नानसेन्स, (सिगरेट का धुँआ छोडता है।)

ली०—फिर मै नही समझी।

न०—लो समझो। मै कल गया था मदन खन्ना के यहाँ। वहाँ पर वहुत-सी 'वेरायटीज' देखी। दो टाइज पसन्द की। ली एक ही। लेकिन उसने दोनो टाईज वण्डल मे वाँध दी और दाम एक ही के लिए।

ली०—(चा का घूँट लेते हुए) तो यह टाई तुम्हे लोटा देनी चाहिए।

न०—क्यो लौटा देनी चाहिए? आई हुई लक्ष्मी को ठुकरा देनी चाहिए? जो चीज आप से आप आ जाय—आ जाय।

ली०—यह चोरी नही है?

न०—चोरी क्यो? मै उसके सामने लाया हूँ। उसने अपने हाथ से वडल वनाया।

ली०—पर दाम तो आपने एक ही के दिए।

न०—पर दाम भी उसी ने लिए।

ली०—नही, यह ठीक नही। इस तरह की भूल तो अक्सर हो ही जाती है।

न०—तो जो भूल करे, 'सफर' करे। (दूसरी सिगरेट जलाता है।)

ली०—और अगर मदन कहला भेजे कि एक टाई आप के साथ ज्यादा चली गई है, तो?

न०—(स्वतत्रता से) तो मै कहला दूँगा कि मै क्या जानूँ? अपनी

दूकान मे देखो। कही किसी कपडे मे लिपटी पडी होगी।

ली०——(रुष्ट होकर) यह बात आपके स्वभाव से अब तक नही गई। जब आप पढते थे, तब भी किताबो के खरीदन मे आप ऐसी ही हाथ की सफाई दिखलाते थे।

न०——(सिगरेट का धुआ छोड कर) और वे लोग हमे कितना लूटते है! यह भी तो सोचो——

ली०——रोजगार करते है! न कमाये तो खाये क्या?

न०——(व्यग से) न कमाये तो खाये क्या? हमसे एक के चार वसूल करतेह! ऐसे है ये कमाने वाले कमीने पूजीपति। इन पूजीपतियो की यही सजा है। जानती हो, कार्ल मार्क्स ने क्या लिखा है? 'फिलाससोफर्स हिदरट् हैव ओनली इण्टरप्रेटेड दि वर्ल्ड इन वेरियस वेज, दि टास्क इज टु चेन्ज इट्।'[१] इस ससार को बदलना है।

ली०——यह सिद्धान्त आपने खूब निकाला!

न०——मेरा सिद्धान्त क्यो, यह तो सोशलिज्म है——डायलेक्टिकल मैटीरियलिज्म।

ली०——अपने दुर्गुणो को सोशलिज्म न बनाइए। नही तो देश का एकदम ही उद्धार हो जायगा।

न०——खैर, यह टाई तो इस समय मिस्टर नवीनचन्द्र राय, एम० ए० के कठ की शोभा वढा रही है और चा दू? तुमने चा बहुत थोडी पी।

ली०——धन्यवाद। मै पी चुकी।

न०——(पुकार कर) चन्दन, यह ले जाओ।

---

१ दार्शनिको ने अभी तक ससार की विवेचना भर की है——अभी तो उस ससार को बदलना है।

च०—(नेपथ्य से) आया हुजूर।

ली०—यह टाई चाहे जितनी अच्छी हो, लेकिन (चन्दन का प्रवेश) आज काफी ठड है। कुहरा बहुत छाया था। ऐसा मालूम होता था कि आज सूरज निकलेगा ही नही। क्यो चन्दन ?

च०—(प्रसन्न हो कर) जी हाँ, हुजूर, खूब कुहरा पड रहा था।

ली०—(उठ कर) अच्छा, तो मै जरा गरम कपडे पहन लू !

(प्रस्थान)

च०—(ट्रे ले जाते हुए) हुजूर, अभी-अभी एक लडकी आई है। कुछ कपडे लिए हुए है।

न०—(भौहे सिकोड कर) लडकी है ?

च०—हाँ, हुजूर, लडकी है। कुछ बेचना चाहती है, हुजूर। अगर हुकुम हो तो—

न०—(सोचते हुए) अभी नही। मै जरा विक्टोरिया पार्क जाऊँगा। पाँच मिनट के लिए। (सोचकर) ऐ ? अच्छा भेज दे।

(चन्दन का प्रस्थान। नवीन टाई के झूलते हुए छोर को हाथ मे लेकर वार-वार झुलाकर देख रहा है। सुधालता का प्रवेश। खद्दर की वेप-भूषा। उसके हाथो मे खद्दर का एक गट्ठर है। आते ही गट्ठर को जमीन पर रख कर दोनो हाथ जोडते हुए—वन्देमातरम्)

न०—(सिर हिला कर) नमस्ते। कहिए ?

सु०—मेरा नाम सुधालता है। मै स्वयसेविका हूँ। खद्दर बेचना चाहती हूँ।

न०—(दुहरा कर) खद्दर ?

सु०—जी हाँ। कल से खद्दर-सप्ताह प्रारभ हो गया है। कुछ खद्दर न खरीदियेगा ?

न०—खद्दर? नही, इस समय तो नही, मेरे पास काफी कपडे है। फिर खद्दर मे कोई क्वालिटी भी तो नही है। नो डिजाइन। और आज पहनो—कल मैला।

सु०—(अनुरोध के स्वर मे) आप लोगो को तो पहनना चाहिए। हाथ का कता और हाथ ही का बुना पहनने मे कितना सन्तोष ।

न०—इस सायन्स की 'एज' मे गाँधीजी का चरखा। (मुस्कुरा कर) ठीक है, एरोप्लेन के रहते हुए बैलगाडी से जल्दी पहुँचने की बात ।

सु०—यह तो स्वावलम्बन की शिक्षा का एक साधन-मात्र है। उस रोज आपने भी तो जवाहर पार्क मे एक लेक्चर दिया था ।

न०—मैने तो सोशलिज्म के सिद्धान्त बताए थे।

सु०—जी हाँ, पर लेक्चर बडा जोशीला था।

न०—(प्रसन्न होकर) अच्छा, आपने सुना था?

सु०—जी हाँ, मै तो वही पास खडी थी। पिनड्राप साइलेन्स थी। जब आपका लेक्चर खत्म हुआ, तो लोग कह रहे थे कि अगर ऐसा लेक्चर सुनने के लिए मिले तो हम लोग रोज यहाँ इकट्ठे हो सकते है।

न०—(प्रसन्नता से) अच्छा?

सु०—कुछ लोग तो आपके लेक्चर की बहुत सी बाते लिखते भी जा रहे थे।

न०—अच्छा, मैने यह नही देखा!

सु०—आप तो लेक्चर दे रहे थे। अच्छी भीड थी। ऐसा लेक्चर बहुत दिनो से नही सुना था।

न०—(नम्रता बतलाते हुए) मै तो किसी तरह अपने विचार प्रकट कर लेता हूँ। बस, यही मुझे आता है, अच्छा, खैर आपके पास कैसे डिजाइन्स है?

सु०—(प्रसन्न होकर) देखिए। बहुत तरह के है। (गट्ठर खोलती है। एक थान दिखलाते हुए) यह गाँधी आश्रम, अहमदाबाद का है। चैक। दस आने गज। बहुत अच्छा। जितना धुलेगा, उतना ही साफ आवेगा।

न०—(हाथ मे लेते हुए) अच्छा ह, कुछ खुरदरा है। यो तो

सु०—(दूसरा थान ले कर) यह मेरठ का है। इससे अच्छा सूत तो इस डिजाइन का कही मिलेगा ही नही। सिर्फ एक रुपया गज है।

न०—(हाथ मे लेकर देखता है) हूँ।

सु०—और यह देखिए पीलीभीत का। आपके लायक। सवा रुपया गज। इसमे आपका सूट बहुत अच्छा बनेगा। आपके सूट मे तो सिर्फ सात गज ही लगेगा?

न०—हाँ, नही तो क्या? यही सात गज।

सु०—तो फिर इसे खरीद लीजिए। दू सात गज ?

न०—है तो अच्छा! सब से अच्छा यही है। लेकिन और इससे अच्छा डिजाइन नही?

सु०—इससे अच्छा डिजाइन दो-तीन दिन मे आ जायगा।

न०—तो फिर तभी न लाइए!

सु०—उस वक्त भी लाऊँगी। अभी भी ले लीजिए। क्या इनमे कोई भी ठीक नही है?

न०—हाँ, ठीक तो है, पर कुछ ठीक नही है।

सु०—यो पहनने की इच्छा हो तो ठीक है, नही तो कुछ भी ठीक नही।

न०—फिर कभी आइये।

सु०—तो क्या मैं निराश होकर जाऊँ? इधर आपका इश्योरेन्स-बिजनेस भी तो चल निकला है। अब तो काफी रुपया आता होगा।

न०—बात यह है कि इस समय मेरे पास कुछ नही है। बिजनेस चल भले ही निकले, लेकिन मुसीबत यह है कि कई दोस्तो की लाइफ इन्श्योर करने से उनकी प्रीमियम मुझे अपने पास से देनी पड जाती है। उनके पास जब रुपये होगे तब कही वे मुझे देगे। इसी महीने मे करीब ३००) रु० अपने पास से देने पडे।

सु०—ठीक है, लेकिन खादी-सप्ताह मे आपको कुछ लेना ही चाहिए। देखिए, शहर मे मैंने दो दिनो मे १७५ रु० की खादी बेच डाली।

न०—खैर, अभी तो पॉच दिन बाकी है। फिर आइए। उस समय तक आपके नये डिजाइन्स भी आ जावेगे।

सु०—तो फिर मैं ऐसे ही वापस ?

न०—फिर आइये। मुझे इस समय जरा विक्टोरिया पार्क जाना है।

सु०—अच्छी बात है। जल्दी मे कपडा खरीदना भी नही चाहिए। मै फिर दो-तीन दिन बाद आऊँगी।

न०—हाँ (अनिश्चित रूप से) फिर देखूगा।

सु०—(गट्ठर बॉधते हुए) अच्छा फिर आऊँगी। जब आपको ये पसन्द नही, तो फिर इन्हे मैं आपको देना भी पसन्द नही करूँगी। अच्छा, (हाथ जोड कर) वन्दे।

(नवीन सिर हिला कर हाथ जोडते है। उसकी ओर गौर से देखते है। सुधा जाती है, पर फिर बाहर से लौट कर—)

मै एक विनय करना चाहती थी। मैं

न०—हॉ, कहिये।

सु०—मैं १४ न० स्टेनली स्ट्रीट मे कपडा बेच कर वही अपना गज भूल आई। आपका मकान तो शायद न० २० है?

न०—हॉ।

सु०—तो आपको कोई आपत्ति तो न होगी, अगर मै अपना गट्ठर

यही छोड जाऊँ? ५-१० मिनट मे ले जाऊँगी। वहाँ से अपना गज ले जाऊँ। रास्ते मे यह गट्ठर व्यर्थ क्यो ढोऊँ? और फिर मुझे आगे ही जाना है।

न०—(स्वीकृत मे सिर हिला कर) नही, मुझे कोई आपत्ति नही है। आप रख जाइये। अगर मै आपके आने तक भी न आ सकूँ, तो मेरा नौकर चन्दन आपको यह गट्ठर दे देगा। मैं नौकर से कह दूँ (पुकार कर) अरे, ओ चन्दन!

च०—(आकर) जी, हुजूर—

न०—देखो, अगर मैं यहाँ न रहूँ तो यह गट्ठर इन्हे दे देना। इनका नाम श्रीमती सुधालता है। समझे?

च०—बहुत अच्छा, हुजूर।

न०—(सुधा से) ठीक?

सु०—धन्यवाद। (प्रस्थान)

(नवीन सिगरेट जलाता है। उसकी नजर 'लीडर' पर पडती है।)

अच्छा? आज का पेपर पढ ही नही पाया! देखूँ! ('लीडर' देखता है. एक मिनट तक पन्ने लौटने पर) कोई खास बात नही। ('लीडर' के पृष्ठ पर विज्ञापन देख कर) अच्छा? टूटल टाईज—प्राइस रुपी वन् एट् ईच। मदन ने मुझसे वन् ट्वैल्व लिए। फूल! (सोचता है। उसकी दृष्टि खद्दर के गट्ठर पर पडती है। वह धीरे से उठता है। गट्ठर खोलता है। उसमे से एक थान निकालता है। उसे कुछ देर देखता है, फिर सोचते हुए उसे खोल कर देखता है। अपने कोट पर रख कर सूट का अनुमान करता है। सिर हिला कर सोचते हुए आलमारी के दराज मे बन्द कर देता है। फिर चुपचाप आकर गठरी उसी तरह बाँध देता है। और लौट कर अखबार पढने लगता है। कभी आलमारी को देखता है, कभी खद्दर के गट्ठर को। शीला का प्रवेश)

ली०—(नवीन को देख कर) आप तो शायद विक्टोरिया पार्क जाने वाले थे ?

न०—हाँ, जरा पेपर पढने लगा। (सँभल कर) अब जा रहा हूँ।

ली०—कोई खास खबर ?

न०—टूटल टाई की कीमत वन् एट् है। मदन ने मुझसे वन् ट्वैल्व लिए।

ली०—(मुस्करा कर) क्या यह खबर छपी है ?

न०—नही जी। टूटल टाईज का विज्ञापन है। उसने मुझ से चार आने ज्यादा लिए। देखी उसकी बेईमानी ?

ली०—खैर, जाने भी दीजिए। समझ लीजिए, चार आने पैसे उसे दान मे दे दिए। (खद्दर के गट्ठर को देखकर) यह गठरी कैसी ?

न०—एक स्वयसेविका खद्दर बेचने आई थी। वह अपना गज यही कही भूल आई। लेने गई है। गट्ठर यही छोड गई है। कहती थी, रास्ते मे व्यर्थ बोझ क्यो ढोऊँ ?

ली०—तो क्या कुछ खरीदा आपने ?

न०—नही तो, खद्दर मुझे कभी पसन्द नही आया।

ली०—आपको तो टाई पसन्द आती है।

न०—(लज्जित होकर) लीला, मुझसे व्यग न करो। तुम्हारा उपदेश मै बहुत सुन चुका। अच्छा अब जाता हूँ।

ली०—सुनिये, सुनिये, (नवीन का प्रस्थान) अच्छा चले गये ? पूछती, मेरी सोने की अँगूठी कहाँ गई। (टेबुल के दरवाज मे खोजती है। चन्दन को पुकार कर) चन्दन !

च०—जी, हुजूर।

ली०—तुझे मालूम है, मेरी सोने की अँगूठी कहाँ है ?

च०—हुजूर, आप कल तो पहिने थी। आपने उतार कहा रक्खी होगी।

ली०—उतार कर रख दी, तभी तो हाथ मे नही है।

च०—आपने बाथ-रूम मे तो नही रखी ?

ली०—(स्मरण करते हुए) शायद वहाँ हो। (प्रस्थान)

(चन्दन अँगूठी यहाँ-वहाँ खोजता है। सुधा का स्वर बाहर से।) मै आ सकती हूँ ?

च०—कौन है ?

सु०—अभी खद्दर बेचने आई थी।

च०—(शान से) अच्छा आओ। (सुधा का प्रवेश।)

सु०—(चन्दन को देखकर) तुम्हारे साहब कहाँ है ? अभी नही आए ?

च०—अभी बाहर से नही आए। तुम अपना गठ्ठर उठा ले जा सकती हो। और देखो जी, इस तरह क्यो चली आती हो ? तुम अपने नाम का कार्ड रखो। जब यहाँ आओ तो पहले उसको पेश करो। समझी ? मिलने का ढग ऐसा नही कि आए और कमरे मे घुस पडे। साहबो मे मिलने का तरीका पहले मुझसे सीखो।

सु०—ठीक है। (खद्दर का गट्ठर उठा कर चलती है।)

च०—और सुनो जी, तुम हाथ मे सोने की अँगूठी नही पहनती ?

सुधा—सोने की अँगूठी ? पूछने का मतलब ?

च०—योही मैने कहा, सोने की अँगूठी अच्छी होती है।

सु०—(दृढ दृष्टि से) अजीब आदमी है ! (प्रस्थान।)

(चन्दन फिर अँगूठी यहाँ-वहाँ खोजने लगता है। लीला का प्रवेश।)

ली०—बाथ-रूम मे भी अँगूठी नही है। टेबुल के दराज मे भी नही है। कोई यहाँ आया तो नही था ?

च०—वही खद्दर बेचने वाली आई थी।

(लीला वह थान दराज मे से निकालकर दिखलाती है। सुधा उसे देख कर—)

सु०—सात रुपये सवा नौ आने।

ली०—(पर्स मे से नोट निकालते हुए) यह लीजिये, दस रुपये का नोट। बाकी दो रुपये पौने सात आने मुझे दे दीजिये।

सु०—(कृतज्ञता से) धन्यवाद, मेरे पास भी नोट ही है। रुपये नही है। अभी नोट भुना कर दे देती हूँ।

(नोट ले कर जाती है। चन्दन उसे घूरता है।)

च०—हुजूर, इसी ने ली है आपकी अँगूठी।

ली०—बको मत, चन्दन। अच्छा देखो। (खद्दर का थान खोलते हुए) यह कैसा है, चन्दन?

च०—(उल्लास से) बहुत अच्छा है, हुजूर अगर इसका सूट बनवायें, तो जवाहरलाल की तरह दिखेगे।

ली०—(हँसकर) अच्छा, जवाहरलाल सूट पहनते है?

च०—हाँ, हुजूर। टैम्स मे वो तसवीर निकली थी कि जवाहरलाल हवाई जहाज के पास खडे थे सूट पहन के!

ली०—(हँसकर) पर तेरे हुजूर तो खद्दर पहनते ही नही।

च०—जरूर पहनेगे, हुजूर! अब आपने लिया है, तो वे जरूर पहनेगे।

ली०—देखो, (अँगूठी की याद) पर चन्दन, मेरी अँगूठी नही मिल रही है। तेरे हुजूर सुनेगे तो नाराज होगे।

च०—(सोचते हुए) जब आप हाथमुँह धो रही थी तब तो नही गिर गई? हुजूर आपको दिखी न हो। आज सुबह घडा कुहरा था, हुजूर!

ली०—(प्रस्थान) सब चीज के लिए तेरा कुहरा था। अच्छा देखूं! (प्रस्थान)

(चन्दन थोडी देर तक खडा सोचता है। फिर खद्दर के थान को हाथ से छूते हुए) वाह, कैसा बढिया है। हुजूर जब पहनेंगे तो (सोच कर) मेरे मुन्नू की माँ ने मेरे लिए कभी ऐसा कपडा नही खरीदा (नवीन का प्रवेश। चन्दन सकपका जाता है। खद्दर को टेबुल पर देख कर नवीन विस्मय मिले क्रोध से घबराए हुए स्वर मे)

न०—क्यो रे यह . खद्दर का थान कहाँ से आया? मैंने कौन यहाँ. . .लाया? उसने . मैंने कह दिया था अभी जरूरत नही, फिर और वह तो गठरी बाँध कर चली गई थी—गई थी? फिर मैंने—

च०—(घबडाकर काँपते हुए) हुजूर, घर के हुजूर ने—हुजूर ने

(सुवा का प्रवेश)

सु०—यह लीजिये, दो रुपये पौने सात आने। देर के लिए माफ कीजिए।

न०—(आश्चर्य से) यह—यह कैसे दो रुपये पौने सात आने!

सु०—आपने यह खद्दर का थान खरीदा था न?

न०—मैंने .ओं मैंने .मैंने तो आपसे कह दिया था कि आप फिर आइये, आप फिर .

सु०—हाँ, लेकिन आपकी श्रीमती जी ने इसे खरीद ही लिया।

न०—मुझसे बिना पूछे?

सु०—यह आप जाने।

न०—अच्छा?

सु०—आपकी श्रीमती जी ने दस रुपये का नोट दिया था! मेरे पास बाकी पैसे नही थे। मैंने कहा अभी नोट भुनाकर लौटाती हूँ। बाकी पैसे लौटाने मे कुछ देर हुई तो क्षमा करे।

न०—खैर, क्षमा-वमा की जरूरत नही। पैसे भी उन्ही को . . ऐ अच्छा टेबुल पर रख दीजिये।

सु०—(टेबुल पर पैसे रखते हुए) आपको यह कपडा खूब जँचेगा। मै आप ही के लिए तो लाई थी। और हाँ, एक मजेदार वात सुनिये। जब मैं लौट कर अपना गट्ठर ले जा रही थी, तो मुझे यह गट्ठर कुछ हलका मालूम हुआ। मैंने समझा, मै एक थान आपके यहाँ ही भूली जा रही हूँ। मै इस विषय मे आपके नौकर से बात ही कर रही थी कि आपकी श्रीमती जी ने वुला कर उस थान के लिए दस रुपये का नोट दिया।

न०—(विह्वल होकर) अच्छा, क्या उन्होने थान पसन्द . ?

सु०—हाँ, पसन्द ही किया होगा, जव मै अपना गज लाने के लिए वापस गई थी, इसी बीच मे उन्होने खद्दर की गठरी खोल कर शायद सव कपडे देखे थे और यही थान पसन्द किया था।

न०—(सोचता है।) हूँ।

सु०—उसी समय उन बेचारी की अँगूठी खो गई। वे भीतर अपनी अँगूठी खोज रही थी और मै बिना उनसे मिले अपना गट्ठर लेकर वाहर चली आई। मुझे क्या पता कि मेरे सूने मे ही मेरे सामान की बिक्री हो रही है। सचमुच ईश्वर वडा दयालु है।

न०—(सोचता है।) हूँ।

सु०—(प्रसन्नता और हर्षातिरेक से) और उनकी उदारता तो देखिये कि जब मै वाहर चली आई, तो मुझे बुलवा कर उन्होने विना वहस किये मुझे सारी कीमत दे दी।

न०—(भ्रान्त होकर) अच्छी वात है। मै जरा थक गया हूँ। आराम चाहता हूँ। फिर कभी दर्शन दीजिये।

सु०—अच्छी वात है। वन्देमातरम् (प्रस्थान।)

(नवीन कुर्सी पर वेवसी से गिर पडता हुआ-सा वैठता है।)

च०—(विचलित होकर) हुजूर, क्या सिर मे दर्द है ? बुलाऊँ उनको, हुजूर—

न०—(सँभल कर) नही, रहने दो। यो ही जरा सिर मे चक्कर-सा आ गया था।

च०—(शीघ्रता से) तो हुजूर, मै बुलाता हूँ उन्हे।

(चन्दन का 'हुजूर' 'हुजूर' कहते हुए प्रस्थान)

(नवीन सोचता है) ओह सम्मान की इतनी अधिक रक्षा ? इस ढग से ! लीला

(लीला का चन्दन के साथ प्रवेश)

च०—(लीला से) देखिये, हुजूर !

(लीला आकर एकदम से नवीन के सिर पर हाथ रखती है, वह घवडाई हुई है।)

लीला—(विह्वल होकर) क्यो, क्या हुआ ? क्या चक्कर आ गया ? चन्दन, जरा पानी लाना।

च०—बहुत अच्छा, हुजूर। (दौडते हुए प्रस्थान)

ली०—क्यो तवीयत आपकी कैसी है ?

न०—नही, यो ही कुछ भारीपन मालूम हो रहा था। तुम्हारी अँगूठी लेकर गया था नाप देने के लिए। तुम्हारे लिए वैसी ही दूसरी बनवाना चाहता था। इश्योरेंस के कुछ रुपये आए थे।

ली०—(चितित होकर) मुझे अँगूठी की जरूरत नही है। आपको चक्कर तो नही आ रहा इस समय ? (चन्दन पानी लेकर आता है।) लीजिये पानी, मुँह धो डालिये।

न०—(जैसे कुछ सोचते हुए) लीला !

ली०—कहिए।

न०—लीला, मै दुनिया बहुत बुरी समझता था, लेकिन—

ली०—(चन्दन से) चन्दन, तुम बाहर जाओ।

(चन्दन का सोचते हुए धीरे धीरे प्रस्थान)

न०—लीला, सोशलिज्म के विचार रखते हुए भी एक आदमी सच्चाई के साथ रह सकता है।

ली०—हाँ।

न०—वह लोगो के साथ ठीक बर्ताव रख सकता है। धनवानो से लड सकता है लेकिन सच्चाई के साथ, प्रेम के साथ। वह बुकसेलर की किताबे नही उडा सकता और खद्दर का थान..

ली०—जाने दीजिए।

न०—लेकिन लीला, मेरे स्वभाव ही में ऐसी बात हो गई थी। मैं देखता हूँ कि छुटपन की पडी हुई आदत बडे होने पर भी नही जाती।

ली०—आप सब बाते समझते है। आप से क्या कहना?

न०—लीला, तुम सचमुच देवी हो।

ली०—(लज्जित होकर) क्या कहते है आप। अच्छा यह बतलाइए कि आपकी तबीयत अब कैसी है?

न०—(स्वस्थ होकर) नही, अब अच्छा हूँ। यो ही कुछ .

ली०—तो कपडे वगैरह उतार डालिये। कुछ हलकापन हो। कालर-टाई की वजह से तो और भी बेचैनी मालूम होती होगी। इसे उतार डालिए।

न०—(आवेग मे) हाँ, इसे उतार डालता हूँ। (उतार कर चन्दन को पुकारते है) चन्दन! (चन्दन का प्रवेश) जाओ। इस टाई को ठीक कर मदन खन्ना के यहाँ दे आओ और कहो कि कल मेरे साथ यह भूल से चली आई थी।

च०—हुजूर अभी आप—

ली०—(आश्चर्य से) अरे. .?

न०—(दृढ़ता से) अभी आप कुछ नही, इसी समय लेकर जाओ।

(चन्दन रेशमी टाई लेकर सिर झुकाए जाता है)

न०—हाँ, जरा पानी लाओ, मुँह की कालिमा धो लूँ।

(पानी के गिलास की ओर हाथ बढ़ाता है। लीला विस्मय और प्रसन्नता से नवीन की ओर देखती रह जाती है)

(परदा गिरता है)

स्वतन्त्रते !

प्रो० गुरुप्रसाद टंडन एम० ए०, एल-एल० बी०

स्वनामधन्य राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी टंडन के द्वितीय पुत्र गुरुप्रसाद जी हैं। इनका जन्म प्रयाग में सं० १९६३ में हुआ है। असहयोग-आन्दोलन के अवसर पर इनका अंगरेजी स्कूल का अध्ययन कई वर्षो तक स्थगित रहा। इस बीच सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा सं० १९७९ मे इन्होंने उत्तीर्ण की जिसमें सर्व प्रथम आने के उपलक्ष मे इन्हें 'पूर्ण पदक' मिला था। इन्होंने बी० ए०, एम० ए०, एल-एल० बी० की उच्च शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय से सम्मानपूर्वक प्राप्त की है। एम० ए० में यह सर्व प्रथम आए थे और शिक्षा-काल में कई पदक इन्हें प्राप्त हुए हैं। विश्वविद्यालय में एक वर्ष तक इन्होंने पुष्टिमार्गीय साहित्य पर शोध का कार्य किया है। प्रयाग में आयोजित द्विवेदी मेला के तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ये प्रबन्ध मंत्री भी रहे हैं। कई बार ये मंगला प्रसाद पारितोषिक के निर्णायक रह चुके हैं। आजकल विक्टोरिया कालेज ग्वालियर के हिन्दी विभाग के ये अध्यक्ष हैं।

रचनाएँ—ब्रजभाषा का साहित्य, मीराबाई का गीतिकाव्य, गुप्त जी का उन्मुक्त काव्य आदि। ('हिन्दी सेवी संसार' से)

देवि स्वतत्रते ! सावन के इस सघन निशीथ में तुम प्रकट हुई हो। भारत लक्ष्मी फूली नही समाती क्योकि सारे लोक का सौन्दर्य उसकी

गोद मे विराजमान है ! मेघ सलामी दाग रहे हे, दामिनी मसाल्ची बन गई है। नक्षत्र पुष्प-वृष्टि मे और सप्तर्षि वेद-पाठ मे सलग्न हैं। भारत के अँधियारे गगन मे प्रकाशपिड तुम्हारी ही तो खोज कर रहे थे। सुरगण भारत के सोभाग्य पर मुसकरा रहे हे और सागर की उत्ताल तरगे चरणस्पर्श के लिए आकुल है। अरे, आज तो यह वसुमती भी हर्षावेग से युवती हो गई है। ऐसी ही तो एक दिव्य रात्रि थी जव मुक्ति-दाता व्रजचन्द्र ने दूज के चन्द्र-सा उदित होकर भादो की अँधेरी को उजेरी मे परिणत कर दिया था ! दासता की लौह-शृखलाएँ टूट गई थी !

तिरगी ध्वजा से अलकृत भारतमाता दूव, दधि रोचना से सजा मगलघट लिए नीराजने मे खडी है। चक्रधारी त्रिरागिनी-पताकाए त्रिपथ-गामिनी की भाँति शुभ्र कीर्ति प्रसार कर रही है। नट-चेटक के नाचगान मे एव विद्युत-दीपावलियो मे सिद्धियाँ रम गई हैं। नर नारी वृन्द प्रफुल्लित हैं। विधान-गृह से उद्वेलित उल्लास और उन्माद की वेगवती तरगे कैलास से रामेश्वर तक और द्वारिका से कामाक्षी तक सव को आत्मसात् करती जा रही है। आज उसकी अधिष्ठात्री देवी का अभिषेक सहज चापल्य छोड भारत लक्ष्मी करेगी।

यह कैसा दिव्य स्वर्ण विहान है ! तृण, तरु, पल्लव और कण कण मे प्रकृति की गरिमा अटखेलियाँ कर रही है मानो पिछले जन्म के सभी पुण्य अकुरित हो उठे है। मलयानिल सेवा-निरत हो सदेश वहन कर रहा है कि देवता जीवन सफल करना चाहे तो मगलोत्सव का दर्शन करे। शतश कण्ठो की स्वर-लहरी अलिगुजन सदृश विमुग्ध हो तुम्हारी अभ्यर्थना मे लीन है। पक्षी आशीर्वाद देते ह तो क्षेमकरी क्षेम की सूचना दे रही है। वैतालो की जयध्वनि और पार्षदो की प्रसन्नता के साथ हर घर कुटी मे मगल-आरती सज रही है। उषा भी तो मगलघट ले कर आई हे। नूतन

जयमाल डाल रही ह। सन् १९४२ की क्रांति मे बलिदान हुए मस्त वीर तुम्हारे चरणो मे नत मस्तक है। तिलक-गाधी, जवाहर-पुरुषोत्तम, पटेल-राजेन्द्र, गोखले एव मालवीय जी की अमर साधना आज फलवती हुई हे। भयकर झञ्झावात, अग्नि-प्रकोप तथा ज्वालामुखियो की बाढ के भीतर मे तुम्हारी कल्याणकारिणी मूर्ति की झॉकी आज मिली है।

ब्रिटिश सत्ता का श्रृगार ओर निर्द्वन्द्व विहार सहसा मूक हो गया। उसकी रक्त-पिपासु मुसक्यान पीली पड गई। वह मादक इतराता हुआ यौवन किधर तिरोहित हो गया! अनाचार, छलना एव उद्वेग मे उन्मत्त सत्ता कैसे ठहर सकती थी? दुर्जय नियतिने प्रतिशोध लिया। आसुरी अमरता के अहकार का ध्वस हो रहा है। हा, काल की क्रूर गति पर चढी वह सत्ता स्वत ही जल उठी है।

तुम्हारे आगमन के साथ ही कट्टर रूढिवाद का जटिल जाल उन्मुक्त होने को उत्सुक हैं। धर्म के नाम पर कुसस्कार का उन्मूलन हो। समाज, राजनीति एव धर्म मे से कलकालिमा धोकर तुम इस तेजस्वी भारत को पुन सुसस्कृत कर दो जिससे अखण्ड राष्ट्रीयता धारण कर मानवता का चिर उपासक वह बन जाय।

तपोनिष्ठे! आओ इस कर्म और ज्ञान के लोक मे आओ! सिकदर, सीजर, महमूद, नादिरशाह का राजसी भोग हमे न चाहिए। मानव रुधिर मे वसुधा बहुत क्लिन्न हो चुकी हे। हमे तो सत्य के पथ पर जाना है। वेद कहते हैं कि सत्य का मुख हिरण्यमय पात्र से ढका है, अर्थात् आनद का स्रोत अविद्या-मेरु पर्वत की ओट मे बह रहा है। वैभव के आकर्षण से बचा कर सात्विक आनन्द के अन्वेषण करने वाले उस पुनीत लोक के अधिवासी हमे बना दो जहॉ अन्तरात्मा का राजविद्रोह शमन हो, रजोगुण के सैनिक नष्ट हो, विवेक मन्त्री बने और सन्तोष पहरा दे, भक्ति-ज्ञान का समीर ताप हर ले और सयम का निर्झर शाश्वत सुखभागी बनावे। साम्राज्यवाद या

आकाश-वाणी (बेतार का तार)

लेखक—श्रीगुलाबराय एम० ए०

वर्तमान युग के वैज्ञानिक चमत्कारो मे तारहीन आकाश-वाणी (Wireless) का चमत्कार सब से अधिक आश्चर्यजनक है। इस यत्र ने मनुष्य को वह शक्ति दे दी है जो पूर्व काल मे योगियो को प्राप्त थी। बेतार के तार द्वारा मनुष्य की गति सारे ससार मे हो गई है, केवल इतना ही नही वरन् अब तो मगल-ग्रह (Mars) से भी सम्बन्ध स्थापित करने की आशा की जा रही है। आप तीन या साढे तीन सो रुपये का एक रेडियो सैट (आकाशवाणी ग्राहक) खरीद लीजिए और जरा से समायोजन (Adjustment) अर्थात् घटा बढा कर मिलान कर के आप कलकत्ता और बम्बई के गाने, किस्से कहानी, बाजार भाव और व्याख्यान और केवल कलकत्ता बम्बई के ही क्यो सात समुद्र पार इगलैण्ड, इटली, फ्रास, जर्मनी, आदि देशो के गायन और व्याख्यान भी अपने कमरे के भीतर बैठे-बैठे सुगमतापूर्वक सुन सकते है। अब आपको ग्रामोफोन के नित नये रेकार्ड खरीदने की जरूरत नही। आपको नये-नये गाने और मनोविनोद की बाते सुनने मे आयेंगी और आपका जी न ऊबेगा। कुछ दिनो पश्चात् तो आपको सिनेमा देखने की भी जरूरत न होगी और आपके कमरे की दीवाल पर ही ससार के रग-मचो के नाच-कूद, आमोद-प्रमोद और खेल तमाशे दिखलाई पडा करेंगे। दूर-दर्शन (Television) अब भविष्य का स्वप्न नही रहा, वह अब दृढ वास्तविकता के क्षेत्र मे आ गया है।

है हमको पहले दिखलाई पडती है और गर्ज जो वायु की तरगो द्वारा आती है पीछे सुनाई पडती है। जैसे-जैसे हम ऊपर जाते है, वायु-मण्डल सूक्ष्म होता जाता है, किन्तु ईथर सारे विश्व मे एक रस व्याप्त रहता है, इस कारण अरबो मील तक के तारागणो की रोशनी हम तक आ जाती है।

दूर तक सवाद भेजने की स्वाभाविक इच्छा तथा वायु द्वारा उस इच्छा की अपूर्ति के भाव को कविवर मैथिलीशरण जी गुप्त ने बालक राहुल (बुद्धदेव का पुत्र) और उसकी माता यशोधरा की वार्त्तालाप द्वारा बडे सुन्दर शब्दो मे बतलाया है।

राहुल

अम्ब! मेरी बात कैसे तुझ तक जाती है?

यशोधरा

बेटा वह वायु पर बैठ उड आती है।

राहुल

होंगे जहाँ तात क्या न होगा वायु माँ, वहाँ?

यशोधरा

बेटा जगत्प्राण वायु, व्यापक नही कहाँ!

राहुल

क्यो अपनी बात वह ले जाता वहाँ नही?

यशोधरा

निज ध्वनि फैलकर लीन होती है यही।

राहुल

और उनकी भी वही? फिर क्या बडाई है?

यह सवाद वायु द्वारा तो नही किन्तु आकाश की विद्युत्-चुम्बक तरगो द्वारा अवश्य पहुँचाया जा सकता था।

हमारे यहाँ दार्शनिकों ने शब्द को आकाश का गुण माना है, यह बात आजकल के विज्ञान के प्रतिकूल अवश्य पड़ती है किन्तु इस सिद्धान्त में तार-हीन संवाद की भावी संभावना छिपी हुई थी। तार-हीन संवाद आकाश की तरंगों द्वारा ही भेजे जाते हैं। यद्यपि क्लार्क मैक्सवैल (Clerk Maxwell) नाम के अंग्रेज विज्ञानवेत्ता ने सिद्धान्तरूप से प्रमाणित कर दिया था कि प्रकाश ईथर की विद्युत्-चुम्बक (Electrio magnetic) तरंगों द्वारा हमारे पास तक आता है, तथापि ईथर की इन तरंगों से काम ले कर उनको प्रयोगात्मक रूप में सिद्ध करने का श्रेय हर्ट्ज (Hertz) को था। उसने यह प्रमाणित कर के दिखला दिया कि ईथर में ऐसी विद्युत्-चुम्बक तरंगें उत्पन्न की जा सकती हैं जो कि स्वर (Pitch) और प्रवेश-शक्ति के सिवाय और सब बातों में प्रकाश की तरंगों के समान हों। ये तरंगें एक सेकिण्ड में पृथ्वी के चारों ओर का आठ मर्तबा चक्कर लगा सकती हैं।

एक रोज प्रयोग करते हुए हर्ट्ज को यह पता चला कि विद्युत्-प्रवाह संग्रह करने वाला लीडन-जार (Leyden-jar) जब एक कुंडली (coil) द्वारा खाली किया जाता है तब यदि कुछ दूरी पर रक्खी हुई दूसरी कुंडली के छोरों का अन्तर बराबर हो तो एक कुंडली की चिंगारी (Spark) दूसरी कुण्डली द्वारा भी (वह कुण्डली यदि बहुत दूर न हो) निकलती हुई दिखलाई पड़ेगी। यह इसी प्रकार होता है जिस प्रकार कि दो सारंगियाँ या सितार एक से मिला कर रख दिये जाते हैं और एक में किया हुआ शब्द दूसरे में अपने आप निकलने लगता है। थोड़ी दूर के लिए तो ये वाद्य भी 'बेतार के तार' बन जाते हैं। यदि दोनों सितार या सारंगी एक से न मिले हों तो एक का स्वर दूसरे से नहीं निकलेगा। बेतार के तार की विद्युत्-चुम्बक तरंगें सारी पृथ्वी में प्रकाश की तरंगों के समान एक दम व्याप्त हो जाती हैं और सूक्ष्म ग्राहक यन्त्रों द्वारा अपना प्रभाव दिखला सकती

है। वायु की तरगे बहुत दूर तक नही जाती है इसीलिए वे वायु में ही लीन हो जाती है।

मारकोनी जब बारह वर्ष का ही था तभी उसने अपने गुरु-देव से हर्ट्ज की विद्युत्-तरगो के बारे मे सुना था। उसकी बाल-कल्पना चपल हो उठी। वह हर्ट्ज के प्रयोगो को दुहराने लगा और इन तरगो का विशेष अनुसधान करना इसके जीवन का लक्ष्य बन गया। वह एक सच्चे भक्त की सलग्नता के साथ अपने लक्ष्य की पूर्ति मे जुट गया। जब कि और बालक खेल-कूद मे समय बिताते थे, वह ससार को चकित कर देने वाली योजना का स्वप्न देखता था किन्तु उसका स्वप्न शेखचिल्ली का सा स्वप्न न था। मारकोनी मे सच्चे वैज्ञानिक की लगन थी, उसी के अनुकूल उसमे परिश्रम और अध्यवसाय था। उसने अपने बाप के बगीचे के दोनो ओर एक-एक खम्भा गाड कर उनके ऊपरी छोरो मे टीन के पतरे लगा दिये और इस प्रकार उसने एक प्रेपक (सवाद भेजने वाला) आकाशी (एरियल) और दूसरा ग्राहक सवाद लेने वाला) आकाशी बना लिया। (आजकल दो ऊँचे खम्भो मे तार बाँध कर आकाशी बना लिया जाता है, ऐसे एरियल बहुत सी कोठियो के ऊपर लगे हुए दिखलाई पडेगे)। इनके द्वारा सकेत भेजने और ग्रहण करने मे मारकोनी को सफलता हुई।

मारकोनी के लिए सवाद भेजने की अपेक्षा उसका ग्रहण करना कठिन कार्य था। विद्युत्-चुम्बक तरगो से मोर्स के यत्र को प्रभावित करने मे विशेष कौशल की आवश्यकता थी किन्तु उसने अपने अध्यवसाय के कारण लक्ष्य में सफलता प्राप्त कर ली और सन् १९०१ मे बडी कठिनाइयो का सामना कर पतग के एरियल की सहायता से मोर्स के सकेतो को एटलांटिक महा-सागर के आर-पार भेजने में समर्थ हुआ।

यद्यपि तार-हीन सवाद के प्रारभिक काल मे मोर्स के यत्रो को प्रभावित कर लेना ही बडी बात थी तथापि मनुष्य की वाणी को बिना तार के

स्थानान्तरित करने वाले आजकल के रेडियो यंत्रो के आगे केवल 'गर गट्ट' का सकेत करने वाले यत्रो का महत्व बहुत कम है। सकेतो मे मनुष्य की वाणी का उतार-चढाव और लोच कहाँ ? इसके लिए बडे सूक्ष्म यत्रों की आवश्यकता हुई। आजकल ग्राहको मे कपाटिकाओ (Valves) से जो कि बिजली की बत्तियो की भाँति होती है विद्युत-चुम्बक तरगो को प्रभाव योग्य बनाने का काम लिया जाता है। इन कपाटिकाओ द्वारा तरगो की शक्ति का विस्तार भी किया जाता है। यदि परिप्रेषण-स्थल (Broad-casting Station) दूर होता है तो अधिक कपाटिकाओं वाला यन्त्र खरीदना पडता है।

सक्षेप मे हम यह कह सकते है कि प्रेषण-स्थल पर मनुष्य की वाणी से उत्पन्न हुई शब्द-तरगे वहाँ से चलाई हुई विद्युत्-चुम्बक तरगो मे वैविध्य (Variations) उत्पन्न कर देती है। ये तरंगे आकाश मे फैल जाती है और एरियल द्वारा पकडी जाकर ग्राहक यत्रो से एक नवीन शक्ति पाकर वायु मे वैसे ही कम्पन उत्पन्न कर देती है जैसे कि मनुष्य की वाणी से होते है। टेलीफोन मे भी प्राय. यही बात होती है किन्तु टेलीफोन की विद्युत् तरगे तार पर होकर चलती है, ये तरगे आकाश मे होकर आती है।

अब तो रेल, जहाज और मोटरो तक मे मारकोनी के सैट दिखलाई पडते है। जहाजो को भिन्न-भिन्न देशों का सवाद पाने के अर्थ किनारे तक पहुँचने की बाट नही देखनी पडती। जहाज मे रोज के रोज नही वरन् घण्टे-घण्टे पर ताजा समाचार मिल जाते है। उड़ाकू लोग भी व्योम-विहार करते हुए जमीन से सम्बन्ध रख सकते है। डूबते हुए जहाज अपने सकट का सवाद दूसरे जहाजो तक भेज कर अपने यात्रियो की प्राण रक्षा कर सकते है। आप घर बैठे दूर देशो का गाना सुन सकते है। उसके लिए केवल मिलान करने की आवश्यकता होती है। हर एक प्रेषक स्थान (Sending Station) भिन्न-भिन्न दीर्घता की तरगें भेजता है जिससे

कि उसका व्यक्तित्व बना रहे। यदि ऐसा न हो तो सब जगहो के संवाद एक दूसरे से मिल जायँ और कुछ सुनाई न पडे। प्रत्येक प्रेषक-स्थान की तरग-दीर्घता (Wave-ength) मालूम रहती है और खबर भेजने का समय भी अखबारो मे छपा रहता है कि किस समय कहाँ से गाना या व्याख्यान का परिप्रेषण (Broadcasting) किया जायगा अर्थात् चारो ओर भेजा जायगा।

हिन्दुस्तान में कलकत्ते, बम्बई और देहली से परिप्रेषण होता है, उनकी तरग-दीर्घताएँ अखबारों में कार्यक्रम के साथ छपी रहती है। अखवारो मे निर्दिष्ट समय पर अपने रेडियो सेट का उसी दीर्घता के अनुकूल मिलान कर लीजिए और आराम से इष्ट मित्रो और बन्धु-बान्धवो के साथ वहाँ से भेजे हुए गाने और संवाद सुनते रहिए। ये तरगे 'रेडिएट' अर्थात् विकीर्ण होकर आती है, (जैसे कि आग की गर्मी हमारे पास आती है) इसलिए इनसे सम्बन्ध रखने वाले यन्त्र रेडियो सेट (Radio Set) कहलाते है। रेडियो सेट रखने वाले को डाकखाने मे १०) रु० प्रति वर्ष जमा करने पडते है।

चन्द्रलोक की यात्रा

लेखक—श्री विश्वनाथ सेठी, एम० ए०

जगत् के एक क्षुद्र प्राणी विहगम को मुक्त गगन मे यथेच्छ विहार करते देख कर मर्त्यलोक का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य चिर-काल से इस बात की ईर्ष्या करता रहा कि पक्षी के समान यदि उसके भी पख होते, तो उसके सुख-सौभाग्य का क्या कहना! ऐसा मालूम होता है कि भगवान् ने मनुष्य की इस ईर्ष्यायुक्त कामना की पुकार सुन ली और उसे पख तैयार करने की बुद्धि दी, जिसकी बदौलत मनुष्य ने वायुयान की रचना की।

इस वायुयान की बदौलत आज देश-देशान्तर की यात्रा सुगम हो गई है। ससार के विभिन्न भागो का सम्बन्ध सुलभ हो गया है। किन्तु इतने पर भी मनुष्य सन्तुष्ट नही है, वह कहता है कि एक वायुयान अधिक से अधिक प्रति घण्टा २०० मील की गति से उड सकता है, इससे क्या होगा? और गति-वेग चाहिए। प्रति घण्टा सात-आठ सौ या एक हजार मील तक!

इतना गति-वेग होने पर वह वायुमण्डल के परे ऊर्ध्वाकाश मे—स्ट्राटसफियर मे—विचरण करेगा, चन्द्रलोक की यात्रा करेगा, मगल-ग्रह मे जीव है या नही, इस बात का अनुसधान करेगा। ऊर्ध्वाकाश मे मनुष्य के अभियान आरम्भ हो चुके है। चन्द्र-लोक तक यात्रा करने के आयोजन भी होने लगे है और इसके लिए साधनो का प्रयोग हो रहा है।

चन्द्र-लोक की यात्रा! हाँ, चन्द्र-लोक की यात्रा अब कोरी काल्पनिक कहानी तक ही सीमाबद्ध नही रह गई है; बल्कि वह अब एक तथ्य के रूप

मे सिद्ध होने वाली है। यूरोप और अमेरिका के वैज्ञानिको का विश्वास है कि उनके द्वारा जो प्रयोग इस समय हो रहे है, उनके फलस्वरूप चन्द्र-लोक की यात्रा भविष्य मे सम्भव सिद्ध हो सकती है।

इस सम्बन्ध मे पहिली कठिनाई है ऊर्ध्वाकाश तथा वायुमण्डल से परे क्या है, इस विषय का ज्ञानाभाव। किन्तु इस दिशा मे भी बेलजियम के प्रो० पिकार्ड जैसे वैज्ञानिको के असमसाहसिक प्रयोगो के परिणाम-स्वरूप कठिनाइयाँ बहुत कुछ कम हो रही है। कुछ समय पहिले यह घोषणा की गई थी कि रूस के एक इजीनियर एल० कार्नेव ने एक ऐसे राकेट (Roket) का आविष्कार किया है जो आकाश के ऊर्ध्व-प्रदेश मे ४० मील की ऊँचाई तक पहुँच सकता है। इस राकेट मे और राकेटो की अपेक्षा एक खास बात यह है कि इसमे वायु को सकुचित करके रखने के लिए इस्पात के सिलेण्डर के स्थान पर एक खास तरह का पम्प है, जिससे राकेट का वज़न बहुत कम हो जाता है।

इस पम्प में और भी सुधार होने की आशा की जाती है, जिससे राकेट प्रति सेकेण्ड २७०० फीट की गति से ६० मील की ऊँचाई तक पहुँच सकेगा।

कार्नेव ने एक दूसरे प्रकार के राकेट की कल्पना की है, जिसकी बनावट बहुत सरल होगी और वह प्रति सेकेण्ड २१०० फीट की गति से २५ मील की ऊँचाई तक पहुँच सकेगा। दोनो प्रकार के राकेटो के साथ ऐसे स्वत अकन करने वाले यन्त्र लगे रहेगे, जो राकेट के अधिक से अधिक ऊँचाई तक पहुँचने पर उससे प्रथक् हो जायँगे और राकेट के समान पाराशूट द्वारा पृथ्वी पर अवतरण करेगे।

कुछ समय पहिले तक वैज्ञानिक-गण चन्द्रलोक की यात्रा को केवल कल्पना-प्रसूत समझ कर उसे वैज्ञानिक प्रयोग-क्षेत्र से परे समझते थे। अब भी कतिपय वैज्ञानिक इस यात्रा के मार्ग मे दुरधिगम्य कठिनाइयो का अनुमान करते है। सुप्रसिद्ध सर जेम्स जीन्स का कहना है कि चन्द्र-लोक

तक पहुँचने पर क्या होगा? चन्द्र-लोक तक यात्रा करने की मैंने बहुत सी कहानियाँ पढी है, किन्तु उनके लेखक इस बात को बिल्कुल भूल जाते है कि इस अज्ञात प्रदेश के पर्यटको को गोली और गोलो के शिलावर्षण के समान उल्काओ के अनवरत निक्षेप का सामना करना पडेगा। बहुत साधारण रूप मे अनुमान करने पर भी ऐसा जान पडता है कि कम से कम १० लाख से अधिक उल्काएँ प्रति दिन चन्द्रमा के बहिर्भाग पर आघात करती होगी और औसतन् उनकी गति प्रति सेकेण्ड ३० मील होगी, जो बन्दूक की गोली की गति की अपेक्षा सौ गुनी अधिक है।

अवश्य ही उल्काओ की इस प्रकार घातक वर्षा के बीच मनुष्य के लिए चन्द्र-लोक मे विचरण करने की भावना असम्भव प्रतीत होती है। किन्तु इसके साथ ही चन्द्रमा पर उल्काओ का जो यह अनवरत आघात हो रहा है, उसी से चन्द्रलोक के भावी पर्यटको के मन मे वहाँ तक पहुँच सकने की भावना उत्पन्न हुई है। वे ऐसे स्वत शक्तिचालित राकेट का व्यवहार करना चाहते है जो चन्द्रमा की ओर द्रुत गति से मनुष्य को प्रक्षिप्त करेगा।

इस समय ससार के विभिन्न देशो मे आधे दर्जन ऐसे स्थान है, जहाँ राकेट के प्रक्षेप की परीक्षा की जाती है। इनमे बर्लिन से पाँच मील की दूरी पर (Raketenflugptelz) में राकेट का जो अड्डा है, वह सबसे बढ कर आधुनिक साधनो से सुसज्जित है। इस अड्डे पर चन्द्र-लोक तक प्रक्षेप करने के लिए विशालकाय राकेट तैयार करके ६ इजीनियर दिन-रात कठिन परिश्रम कर रहे है। इनमे राडल्फ नेबेल, विलोले क्लाम रेडेल के नाम यहाँ बडे गौरव एव सम्मान के साथ लिए जाते है। आधुनिक जर्मनी के आदर्श-स्वरूप इन युवक इजीनियरों की अवस्था अभी ३० के अन्दर ही है। इनका उत्साह और कर्मोद्यम प्रशसनीय है। अति उग्र विस्फोटक द्रव्यो और तरल वाष्पो के बीच मे इस प्रकार निश्चिन्त भाव से विचरण करते देखे

जाते है, मानो राकेट द्वारा यात्रा करने के प्रयोगो मे अब तक जो अधिकाधिक प्राणनाश हुए है, उनमे ये सर्वथा उदासीन हो। कारीगर तो एक खास किस्म की पोशाक—जो अग्नि-स्पर्श से जलती नही—पहन कर राकेट के कारतूसो को तरल आक्सिजन से भरते है। बाहर मैदान मे एक पर्य-वेक्षण-स्तम्भ बना हुआ है, जहाँ से वैज्ञानिक और इजीनियर लोग आकाश मे प्रक्षिप्त राकेट की गति का पर्यवेक्षण करते है।

परीक्षा के रूप मे इस प्रकार प्रयोग किये जाने वाले राकेट दो प्रकार के होते है। इनमे एक बारूद जैसी चीज से भरा रहता है और उसके द्वारा चालित होता है और दूसरा तरल द्रव्य से। प्रारम्भ मे जो प्रयोग जर्मन वैज्ञानिक फ्रिज वान ओपेल और मैक्स वेलियर द्वारा हुए थे, वे बारूद जैसे सफूफ पदार्थ द्वारा चालित राकेट से। इन दोनो ही वैज्ञानिको ने अपने अनुसन्धान कार्य मे अपने प्राणो की आहुतियाँ दे दी। किन्तु अब जो लोग इस सम्बन्ध मे प्रयोग कर रहे है, वे इस बात पर एकमत है कि वैज्ञानिक प्रयोग के लिए बारूद जैसे सफूफ द्वारा चालित राकेट उपयुक्त नही है। इसलिए वे लोग अब राकेट के ईन्धन के लिए तरल पदार्थ का प्रयोग करने लगे है।

छोटे छोटे राकेटो के लिए सबसे सफल ईन्धन तरल ऑक्सिजन-मिश्रित पेट्रोल या अलकोहल पाया गया है। किन्तु इस प्रकार के ईन्धन बहुत ही खतरनाक होते है। तरल ऑक्सिजन के साथ मिश्रित पेट्रोल एक भयानक सम्मिश्रण बन जाता है और यह बडा ही शक्तिशाली होता है। बर्लिन के इस अड्डे मे राकेट द्वारा अब तक जितने प्रयोग हुए है, उन सबका विवरण रखा जाता है। केवल इस अड्डे का ही नही, बल्कि ससार के अन्यान्य भागो मे राकेट-प्रयोग के जो अड्डे बने हुए है, वहाँ के परिणाम भी यहाँ सग्रहीत है।

राकेट द्वारा अब तक अधिक से अधिक ६ मील की ऊँचाई तक पहुँचा जा सका है। ऊर्ध्वाकाश मे प्रो० पिकार्ड बैलून के सहारे जितना ऊँचा उठ सके थे, उसकी तुलना मे यह ऊँचाई बहुत तुच्छ प्रतीत होती है। किन्तु इस प्रसग मे यह स्मरण रखना चाहिए कि यह राकेट प्रति घण्टा लगभग ६०० मील गति वेग से गतिमान हो रहा था और पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के साथ सग्राम करने के लिए अत्यधिक गति-वेग आवश्यक है।

दो वर्ष पूर्व रेलहोल्ड टिलिग नामक एक जर्मन प्रयोगकर्त्ता ने सफल ईन्धन द्वारा चालित उक्त राकेट का प्रयोग किया था। बाद मे हनोवर के पास अपनी प्रयोगशाला मे प्रयोग करते समय धडाके से उसकी मृत्यु हो गई। उसके तीन सहायको मे एक लडकी थी। वह भी उस धडाके से मृत्यु को प्राप्त हुई। इस प्रकार चन्द्र-लोक तक के मार्ग को प्रशस्त करने वाले प्रवर्तको को अब तक गहरा मूल्य देना पडा है।

बर्लिन के एक समाचार-पत्र का प्रतिनिधि न्यू बेवल्स-वर्ग पर्यवेक्षणशाला के डायरेक्टर अध्यापक गुथनिच से मिला था। वार्त्तालाप के प्रसग मे उन्होने अपना यह विश्वास प्रकट किया कि वह दिन दूर नही है, जब कि पृथ्वी और चन्द्र-लोक के बीच आवागमन स्थापित करने का साधन ढूढ निकाला जायगा।

अध्यापक गुथनिच ने कहा—"मुझे इस बात का निश्चय है कि यदि चन्द्र-लोक तक पहुँचने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता आतुर हो उठे, तो इस समय हमे जो साधन उपलब्ध है उनसे हम चन्द्रमा पर विजय प्राप्त किए बिना नही रहेगे।

"चन्द्र-लोक तक की यात्रा करने मे हमे केवल वायु मण्डल जनित चाप एव तापमान की भयानक विभिन्नताओ का ही सामना नही करना पडेगा, बल्कि इसके साथ-साथ इस बात का भी खतरा है कि शून्याकाश से होकर सवेग दौडते हुए हम प्रस्तर-खण्डो से टकरा न जायँ। जब तक चन्द्रलोक

तक की उडान अत्यावश्यक न हो उठे, तब तक इसके लिए प्रयत्न किया जायगा, ऐसा मै नही सोचता। कारण, इस प्रयत्न का मूल्य बहुत महँगा पडेगा।"

जर्मनी के अध्यापक हर्मन ओवर्थ इस समय राकेट-प्रयोग मे सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञ समझे जाते है। जन्म से वे रूमानियन है। बर्लिन की एक पर्यवेक्षण-शाला मे आपने जो प्रयोग किये है तथा "आकाश-यात्रा के भिन्न भिन्न तरीके" इस विषय पर आपने जो महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है, उससे आप अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिको के दल मे अग्रगण्य समझे जाने लगे है, जो यह विश्वास करते है कि हम लोग इसी पीढी मे चन्द्रलोक की यात्रा करने में समर्थ होगे।

कुछ समय से प्रोफेसर ओवर्थ राकेट के प्रयोग मे ईन्धन की समस्या पर ध्यान दे रहे है। लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व न्यूटन ने यह आविष्कार किया था कि वायुमण्डल से होकर सचरण करने वाले राकेट के लिए वायु के अवलम्ब की आवश्यकता नही है, बल्कि वह स्वय अपनी आन्तरिक शक्ति द्वारा सचालित होता है। इसी तत्व पर ओवर्थ तर्क करते है कि राकेट के आधार पर इस प्रकार का आकाश-यान बनाया जा सकता है, जो वाष्प-परमाणुओ के विताडन से अग्रसर होता रहे।

इन सब प्रयोगो और तथ्य-सग्रह के फलस्वरूप एक जर्मन समिति की स्थापना हुई है, जिसके लगभग एक हजार सदस्य है। यह समिति आकाश मे यात्रा करने वालो की समिति कही जाती है। इस समिति के एक आविष्कर्त्ता ने चन्द्र-लोक की यात्रा करने वाले अपने राकेट वायुयान के लिए एक साथी की आवश्यकता प्रकाशित कराई और उम्मीदवारो को आवेदन-पत्र भेजने के लिए आमन्त्रित किया, तो ८७ आदमियो ने आवेदन-पत्र भेजे। इनमे २० स्त्रियाँ थी।

अमेरिका के मोचेस्टर विश्वविद्यालय के प्रो० गोडार्ड ने इस राकेट-विज्ञान की उन्नति के लिए जितना किया है, उतना सम्भवत जीवित मनुष्यो मे किसी ने नही किया। दस वर्ष तक व्यापक गवेषणा करने के वाद आपने सन् १९२९ मे एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसमे आधुनिक राकेट की सम्भावनाओ का विश्लेषण करते हुए उससे सम्वन्ध रखने वाली समस्याओ का वर्णन किया गया था और कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने के लिए व्यावहारिक उपाय सुझाये गये थे।

इसके प्रयोग मे अभी तक ५०० मील प्रति घण्टा से अधिक का गति-वेग देखा गया है।